अगस्त 2025

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 89 अंक- 8 । प्रति - ₹ 25 । ₹ 300 वार्षिक

13 ▶ संतुलन एवं प्रगति का राजमार्ग
43 ▶ जीवन प्रबंधन के स्वर्णिम सूत्र
22 ▶ रक्षाबंधन : एक ऐतिहासिक पर्व
48 ▶ ज्ञानी कर्मफल से बँधता नहीं, नियुक्त रहता है

75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति

अगस्त-1950

निष्पाप बनने की प्रेरणा

पाप का फल दुःख होता है, इस बात को साधारणतः सभी लोग जानते हैं, फिर भी बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो पापों से बचने का प्रयत्न करते हैं। दुःखों से लोग डरते हैं, पर दुःखों के कारण पाप को नहीं छोड़ते। यह ऐसा ही है,जैसे कोई अग्नि तो हाथ पर रखे, पर झुलसने से बचना चाहे। देखा जाता है कि अधिकांश मनुष्य ऐसी ही बालक्रीड़ा में व्यस्त रहते हैं। दुःख चाहता हो, कष्ट और विपत्ति की यातना सहना चाहता हो, ऐसा कोई मनुष्य शायद ही मिलेगा। जो लोग धर्म की तपश्चर्या में परमार्थ लाभ के लिए कष्ट सहते हैं, वे किसी बड़े आत्मिक सुख की तुलना में छोटे सांसारिक कष्ट को ग्रहण कर लेते हैं, वे भी वस्तुतः सुख के आकांक्षी ही हैं।

महर्षि व्यास ने लोगों की इस मूर्खता पर आश्चर्य प्रकट किया है कि वे दुःख को न चाहते हुए भी पाप करते हैं। पाप के अतिरिक्त भी दुःख का कोई अन्य कारण हो सकता है, पर यह निश्चित है कि पाप की प्रतिक्रिया दुःख के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती। बुरे कर्म का फल बुरा ही होगा, भले ही वह आज हो या कल। इतना होते हुए भी लोग पाप करने से बाज नहीं आते, इसका कारण वह भूल है जिसे शास्त्रीय भाषा में माया, भ्रांति, अविद्या, असूया आदि नामों से पुकारा जाता है।

(अखण्ड ज्योति, अगस्त– 1950, पृष्ठ-4)

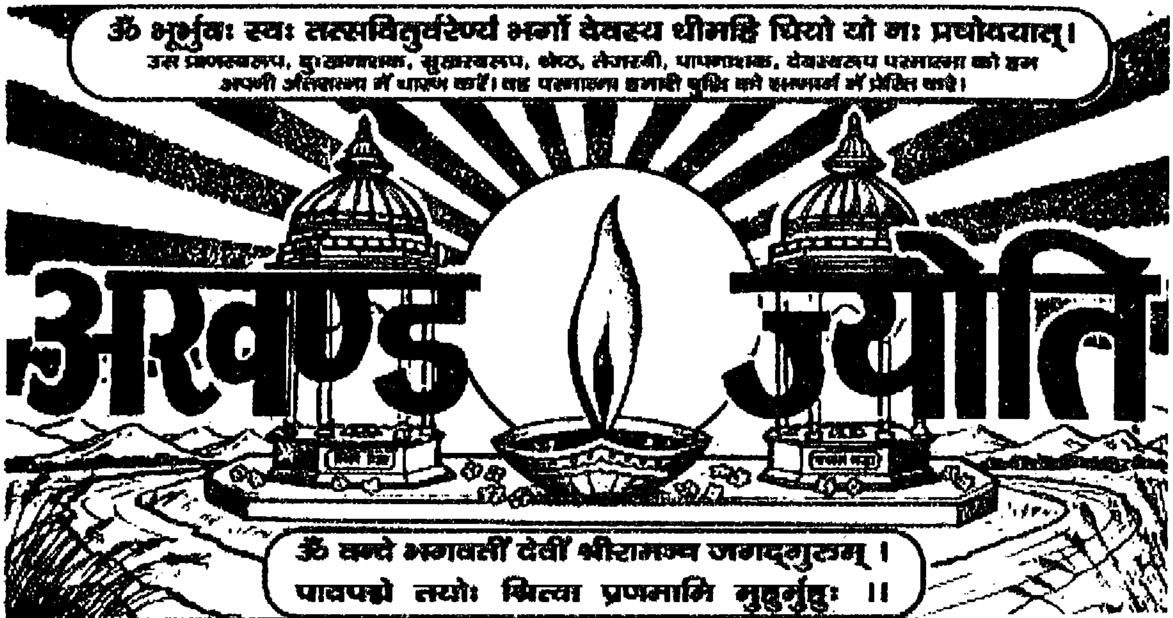

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रात: 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	89
अंक	:	08
अगस्त	:	2025
श्रावण-भाद्रपद	:	2082
प्रकाशन तिथि	:	01.07.2025

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से	:	540/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में सामान्य डाक से	:	6000/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से (वार्षिक)	:	+240/-

विचार क्रांति की साहित्य साधना

(क्रमश:)

विचार क्रांति की साहित्य साधना से जन-मन में विचार क्रांति के बीज बोए जाने का क्रम बना। विचार-परिवर्तन से जीवन परिवर्तन, विचार क्रांति से जीवन क्रांति—यही इसका महामंत्र था। यह साहित्य-साधना उनके लिए किसी भी तरह गायत्री साधना से कम न थी। प्रतिदिन का प्रात:काल उनकी लेखन-साधना के लिए निर्धारित था। ब्रह्मवेला से उषाकाल तक गुरुदेव का गुरुज्ञान लेखनी से अवतरित होता रहा। सुबह के सूर्योदय की स्वर्णिम किरणों की ही भाँति, उनके हाथ में थमे कोरे कागज अपने प्रत्येक पृष्ठ व पंक्ति में ज्ञान की शब्द-रश्मियों से जगमगाने लगते थे। यही शब्द-ज्योति बाद में पत्रिका एवं पुस्तकों की प्रकाशन-प्रक्रिया से गुजरकर पढ़ने वालों की जीवन-ज्योति बनती। साधकों को इससे उनकी साधना की आध्यात्मिक ऊर्जा मिलती। परिजन इसे पढ़कर अपने लिए गुरुपिता के प्रेम का प्रकाश बटोरते। साहित्यप्रेमियों के लिए इसमें साहित्य के विविध रसों की रसानुभूति होती। अनेकों वरिष्ठ साहित्यकारों के लिए उनकी साहित्य साधना अतिशक्तिशाली ऊर्जासंपन्न चुंबकीय आकर्षण थी, जिससे वे बरबस खिंचे चले आते थे। विविध अवसरों पर उनसे मिले हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजेंद्र अवस्थी, दुष्यंत कुमार जैसे अनेकों का कहना था—'उनका साहित्य पर्वतीय क्षेत्र में कल-कल, छल-छल बहती, अपने जल में, अनेकों औषधीय गुणों को समेटती गंगा की जलधारा है। इसकी हर पंक्ति गंगा की जल-तरंग है, जिसमें हर-हर का आध्यात्मिक नाद है। इसके पठन-पाठन में गंगा-स्नान से कम पुण्य नहीं है। जीवन के जिज्ञासुओं के लिए यह प्रज्ञापुरुष का समग्र दर्शन है। उनके बहुआयामी साहित्य के सभी आयाम दिव्य व दैवी हैं। इसमें जिसने जो चाहा, उसे वही मिला।' ❐

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- विचार क्रांति की साहित्य साधना 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  प्रकृति के विरोध से उत्पन्न संकट 5
- गायत्री महामंत्र-साधना 7
- सत्यमेव जयते 10
- वृत्ति 12
- संतुलन एवं प्रगति का राजमार्ग 13
- मानवीय गरिमा को पहचानें 16
- साधना 20
- **पर्व विशेष- रक्षाबंधन पर्व**
  रक्षाबंधन : एक ऐतिहासिक पर्व 22
- मन की शांति 25
- सरस्वती नदी : एक सांस्कृतिक धरोहर एवं विरासत 27
- उत्साह का संचार, लाए जीवन में विस्तार 30
- स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है—उपवास 32
- आजादी की वीरांगनाएँ 34
- अध्यात्म का पहला सोपान—कर्मयोग 38
- घर-आँगन की शोभा—गौरैया 40
- जीवन प्रबंधन के स्वर्णिम सूत्र 43
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—196**
  केदारनाथ आपदा पीड़ितों पर यौगिक अभ्यास का प्रभाव 45
- **युगगीता—303**
  ज्ञानी कर्मफल से बँधता नहीं, नियुक्त रहता है 48
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  सौभाग्यशाली वसंत 50
- **विश्वविद्यालय परिसर से—242**
  भारत की अखंडता को सुनिश्चित करता विश्वविद्यालय 57
- **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
  व्यवस्था का व्यवस्थित क्रम 60
- **अपनों से अपनी बात**
  सादा जीवन-उच्च विचार 63
- जीत का विश्वास भर (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

राष्ट्र की रक्षा के लिए कटिबद्ध सैनिकों की कलाइयों में बहनों द्वारा रक्षासूत्र बंधन

अगस्त-सितंबर, 2025 के पर्व-त्योहार

मंगलवार	05 अगस्त	पवित्रा एकादशी
शनिवार	09 अगस्त	पूर्णिमा/रक्षाबंधन
मंगलवार	12 अगस्त	बहुला चौथ
शुक्रवार	15 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस/ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
मंगलवार	19 अगस्त	अजा एकादशी
शनिवार	23 अगस्त	कुशाग्रहणी अमावस्या
मंगलवार	26 अगस्त	हरितालिका व्रत
बुधवार	27 अगस्त	गणेश चतुर्थी
गुरुवार	28 अगस्त	ऋषि पंचमी
बुधवार	03 सितंबर	जलझूलनी एकादशी
गुरुवार	04 सितंबर	वामन जयंती
शनिवार	06 सितंबर	अनंत चतुर्दशी
रविवार	07 सितंबर	महालयारंभ/महाप्रयाण दिवस वं. माताजी
गुरुवार	11 सितंबर	परमवंदनीया माताजी जयंती
सोमवार	15 सितंबर	मातृ नवमी
बुधवार	17 सितंबर	इंदिरा एकादशी
शुक्रवार	19 सितंबर	परमपूज्य गुरुदेव जयंती
रविवार	21 सितंबर	पितृमोक्ष अमावस्या
सोमवार	22 सितंबर	नवरात्रारंभ

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

प्रकृति के विरोध से उत्पन्न संकट

ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिमालय एवं अंटार्टिका में जमे हुए ग्लेशियर के पिघलने का अनुमान है। इस पानी के कारण समुद्र का जलस्तर बढ़ेगा और कई द्वीप जलमग्न हो सकते हैं। इसके साथ ही ग्लोबल वार्मिंग का अपने देश की कृषि और देश के किसानों पर पड़ने वाला प्रभाव भी अत्यंत चिंताजनक है।

पिछले 100 वर्षों में भारत में तापमान 0.6 डिगरी बढ़ा है। अनुमान है कि इस सदी के अंत तक इसमें 2.4 डिगरी की वृद्धि होगी, जो कि पिछली सदी में हुई वृद्धि का चार गुना है। दुनिया के तमाम देशों द्वारा स्थापित इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज ने अनुमान लगाया है कि बाढ़, चक्रवात तथा सूखे की घटनाओं में भारी वृद्धि होगी।

विश्व बैंक के एक अध्ययन के अनुसार जो भीषण बाढ़ अब तक 100 वर्षों में एक बार आती थी, वैसी बाढ़ हर 10 वर्षों में आने की संभावना है। पूरे वर्ष में होने वाली वर्षा लगभग पूर्ववत् रहेगी, परंतु इसका वितरण बदल जाएगा। जोरदार बारिश के बाद लंबा सूखा पड़ सकता है।

पिछली सदी में हुई तापमान में मामूली वृद्धि से हजारों किसान आत्महत्या को मजबूर हुए हैं। अनुमान लगाया जा सकता है कि 4 गुना वृद्धि से कितनी तबाही मचेगी। यह दुष्प्रभाव असिंचित खेती पर ज्यादा पड़ेगा। देश के बड़े इलाके में बाजरा, मक्का तथा रागी की खेती होती है, जो कि पूर्णतया वर्षा पर निर्भर रहती है। वर्षा का स्वरूप बदलने से ये फसलें चौपट होंगी। किसानों की माँग होगी कि सिंचाई का विस्तार हो।

जाड़े में होने वाली वर्षा रबी की फसल के लिए विशेषकर उपयोगी होती है। इस वर्षा में भी कमी होने का अनुमान है। फलस्वरूप वर्तमान में सिंचित क्षेत्रों में भी सिंचाई की माँग बढ़ेगी, लेकिन पानी की उपलब्धता घटेगी। पहाड़ी क्षेत्रों में पड़ने वाली बरफ ही पिघलकर हमारी नदियों में पानी बनकर बहती है। बरफ कम गिरने से गरमी में नदियों में पानी की मात्रा कम होगी।

इसके अतिरिक्त हमारे भूमिगत जल के तालाब भी सूख रहे हैं। लगभग पूरे देश में ट्यूबवेलों की गहराई बढ़ाई जा रही है। चूँकि भूमिगत जल का अति दोहन हो रहा है, अतः जितना पानी वर्षा के समय भूमि में समाता है, उससे ज्यादा निकाला जा रहा है। भूमिगत जल का पुनर्भरण कम हो रहा है; क्योंकि बाढ़ पर नियंत्रण करने से पानी फैल नहीं रहा है और भूमि में रिस नहीं रहा है।

कुछ वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि वर्षा के जल को टिहरी तथा भाखड़ा जैसे बड़े बाँधों में जमा कर लिया जाए। बढ़ते तापमान के सामने यह रणनीति भी असफल होगी; क्योंकि इन बाँधों से बड़ी मात्रा में वाष्पीकरण होगा, जिससे पानी की उपलब्धता घटेगी। अमेरिका के 12 बड़े बाँधों के अध्ययन में अनुमान लगाया है कि आने वाले वर्षों में वाष्पीकरण में 9% की वृद्धि होगी; जबकि यह ठंढे देश का आकलन है।

भारत जैसे गरम देश में वाष्पीकरण से पानी का घाटा ज्यादा होगा। ऐसे में हम हर तरफ से घिरते जा रहे हैं। सिंचाई की माँग बढ़ेगी, परंतु पानी की उपलब्धता घटेगी। बरफ कम गिरने से गरमी में नदी में पानी कम होगा।

बाढ़ पर नियंत्रण करने से भूमिगत जल का पुनर्भरण नहीं होगा। बड़े बाँधों से वाष्पीकरण होने से पानी की हानि ज्यादा होगी। इसके अतिरिक्त मैसेचूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलोजी द्वारा किए गए अध्ययन में बताया गया है कि यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका के देशों की कृषि के लिए ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव सकारात्मक होगा।

वर्तमान में यहाँ ठंढ ज्यादा पड़ती है। तापमान में कुछ वृद्धि से इन देशों का मौसम कृषि के अनुकूल हो जाएगा। अतः विकसित देशों का पलड़ा भारी हो जाएगा। उनके यहाँ खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ेगा; जबकि हमारे यहाँ घटेगा। साठ के दशक में हमें अमेरिका से खाद्यान्न की भीख माँगनी पड़ी थी। वैसी ही स्थिति पुनः उत्पन्न हो सकती है। इस उभरते संकट का सामना करने के लिए हमें अपनी कृषि और जल नीति में मौलिक परिवर्तन करने होंगे।

हरित क्रांति के बाद हमने खाद्यान्नों की अपनी पारंपरिक प्रजातियों को त्यागकर हाई-यील्डिंग प्रजातियों को अपनाया है। इससे खाद्यान्न उत्पादन भी बढ़ा है, परंतु ये प्रजातियाँ पानी के संकट को बरदाश्त नहीं कर पाती हैं। पर्याप्त पानी न मिलने पर इनका उत्पादन प्रायः शून्य हो जाता है। इसकी तुलना में हमारी पारंपरिक प्रजातियाँ मौसम की मार को झेल लेती हैं, भले ही उनका उत्पादन कम होता है। अपनी खाद्य सुरक्षा को बनाए रखने के लिए जरूरी है कि हम खाद्यान्नों की पारंपरिक प्रजातियों को अपनाएँ; क्योंकि ये पानी कम माँगती हैं।

प्रश्न है कि खेती से आई इनके उत्पादन में गिरावट की भरपाई कैसे होगी? उपाय है कि अंगूर, लाल मिर्च, मेंथा और गन्ने जैसी जल-सघन फसलों पर टैक्स लगाकर इनका उत्पादन कम किया जाए अथवा केरल जैसे प्रचुर वर्षा वाले क्षेत्रों में इनकी खेती को सीमित कर दिया जाए। इन उत्पादों का आयात भी किया जा सकता है। इन फसलों का उत्पादन कम करने से पानी की बचत होगी।

इस पानी का उपयोग पारंपरिक प्रजातियों से खाद्यान्न का उत्पादन करने के लिए किया जा सकता है, तब हमारी खाद्य सुरक्षा स्थापित हो सकेगी। तूफान, सूखे तथा बाढ़ के समय हमारे किसानों को कुछ उत्पादन मिल जाएगा। अंगूर जैसी विलासिता की वस्तुएँ बहुत महँगी हो जाएँगी। खाद्यान्न भी कुछ महँगे होंगे; क्योंकि प्रति हेक्टेयर उपज कम होगी; जबकि लागत लगभग पूर्ववत् रहेगी। अपनी खाद्य सुरक्षा बनाए रखने के लिए हमें खाद्यान्नों की इस छोटी मॉडल वृद्धि को स्वीकार करना चाहिए।

दूसरा विषय जल संसाधनों का है। मानसून के पानी का भंडारण जरूरी है, परंतु बड़े बाँधों में भंडारण करना हानिप्रद है, क्योंकि इनसे वाष्पीकरण अधिक होता है। उपाय है कि वर्षा के जल का भंडारण भूमिगत एक्वीफरों में किया जाए। धरती के गर्भ में विशाल तालाब होते हैं, जिन्हें एक्वीफर कहा जाता है। वर्षा के पानी को ट्यूबवेलों के माध्यम से इन एक्वीफरों में डाला जा सकता है। नदियों द्वारा पहाड़ से लाए जा रहे पानी को भी नियंत्रित करके इन ट्यूबवेलों में डाला जा सकता है।

एक्वीफर में पड़े पानी का वाष्पीकरण नहीं होता है। गाँवों को ऊँचे स्थानों पर तथा मकानों को स्टिलट पर बनाना चाहिए, जिससे बाढ़ से जान-माल का नुकसान न हो।

इस मुद्दे पर कोरे भाषण देने से काम नहीं चलेगा। जरूरत है कि देश की कृषि पर मँडराते संकट से निबटने की रणनीति बनाई जाए। अपना घर जल रहा हो तो पड़ोसियों के साथ अग्निशमन नीति पर वार्त्ता अर्थहीन होती है। पहले घर में लगी आग बुझाना चाहिए। इस विश्वव्यापी संकट हेतु हमें अपनी व्यवस्था सही करनी चाहिए। ❑

गायत्री महामंत्र-साधना

गायत्री महामंत्र की सर्वश्रेष्ठता सर्वविदित है, जिसके आधार पर इसे गुरुमंत्र, महामंत्र तक की संज्ञा दी गई है। शास्त्रों के पन्ने इसके गुणगान से भरे पड़े हैं। युग के विश्वामित्र परमपूज्य गुरुदेव ने इस युग में गायत्री महामंत्र को सिद्ध कर इसको जनसुलभ कराया। शब्द नियोजन के आधार पर इसके मांत्रिक रहस्य बहुत गूढ़ एवं प्रभावशाली हैं तथा इसका हर अक्षर स्वयं में बीजमंत्र की तरह कार्य करता है।

मंत्र के इस पक्ष को छोड़ भी दें, तो इसका अर्थ-चिंतन एवं भावार्थ भी स्वयं में बेजोड़ है। इसका प्रत्येक चरण गहरे दार्शनिक एवं आध्यात्मिक रहस्य लिए हुए है। मात्र इनका चिंतन करते हुए गायत्रीसाधक जीवन के अनसुलझे रहस्यों का अनावरण कर सकता है। प्रस्तुत है गायत्री महामंत्र के शब्दों का अर्थ-चिंतन करता हुआ यह सरल विवरण।

गायत्री महामंत्र की व्याहृति में **ॐ भूः भुवः स्वः** आते हैं। यहाँ ॐ परमपिता परमेश्वर, ब्रह्म का शब्द प्रतीक है, जिसे शब्द ब्रह्म, नाद ब्रह्म की संज्ञा भी दी गई है। **भूः, भुवः, स्वः**—तीन लोकों के प्रतीक हैं और परमात्मा तीनों लोकों में व्याप्त हैं। इस रूप में इन शब्दों को चिंतन करते हुए साधक तीनों लोकों में व्याप्त परमेश्वर का भाव चिंतन करता है।

पूरी सृष्टि ईश्वरीय इच्छा एवं विधान के अंतर्गत चल रही है। यहाँ कुछ भी ऐसा नहीं, जो ईश्वर की इच्छा के बिना संचालित हो। यह भाव चिंतन साधक को एक निश्चिंतता का भाव देता है और वह तीनों लोकों में ईश्वरीय शक्ति को निहारते हुए एक नई भावदृष्टि को पाता है।

फिर **भूः, भुवः, स्वः** व्यक्ति के स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों के भी प्रतीक हैं, जिनमें परमात्मा व्याप्त हैं और यह सर्वविदित है कि ईश्वरीय अंश एवं प्रतिनिधि के रूप में व्यक्ति की अंतरात्मा विद्यमान है। इसके साथ इसका चिंतन-मनन करते हुए साधक अंतर्यामी ईश्वर का भी बोध करता है कि परमात्मा हमारे प्रत्येक विचार, भाव, व्यवहार, संवेदना को जानते हैं, समझते हैं और देख भी रहे हैं।

इस तरह साधक सोते-जागते, खाते-पीते, चलते-फिरते, दूसरों से व्यवहार करते और इस जगत् में विचरण करते समय अंदर-बाहर ईश्वरीय उपस्थिति को अनुभव कर सकता है। इस तरह से गायत्री महामंत्र का पहला चरण गायत्रीसाधक में आस्तिकता के भाव को जगाने वाला है। साधक को विश्वास होता है कि इस जगत् और उसके जीवन की कोई संचालक सत्ता है।

वह समझ पाता है कि यहाँ चारों ओर सब कुछ किसी विधान के अंतर्गत चल रहा है और वह विधान अचूक, अटल एवं परम चैतन्य है व साथ ही जिसकी आँखों में कोई धूल नहीं झोंक सकता। हम वर्तमान में जो कुछ भी हैं, वह उसी के विधान के अंतर्गत हैं और इस विधान के अनुरूप जीवन को जीते हुए, जीवन के परमोत्कर्ष की ओर बढ़ सकते हैं या फिर उस विधान की अवज्ञा करते हुए पतन के गर्त में भी गिर सकते हैं। सार रूप में, हर पल ईश्वरीय उपस्थिति का भान गायत्री महामंत्र के अर्थ-चिंतन की पहली देन है।

गायत्री महामंत्र का दूसरा चरण इसका प्राण है, जो **तत्, सवितुः, वरेण्यम्** के रूप में साधक का मार्गदर्शन करता है। **तत्** का अर्थ उस ओंकारस्वरूप परमसत्य, परमात्मा के लिए है और सविता उसके स्वप्रकाशित चैतन्यस्वरूप का द्योतक है, जिसे मंत्र के देवता व गायत्रीसाधक के इष्ट, आराध्य के रूप में माना जाता है। स्थूल रूप में यह उगते हुए स्वर्णिम सूर्य के रूप में है, लेकिन सूक्ष्म रूप में यह सृष्टि के मूल में विद्यमान स्वप्रकाशित प्राणों का स्रोत, आदि-अनादि परम चैतन्य प्रकाश की सत्ता है।

मालूम हो कि इस जगत् में कई चीजें प्रकाशवान हैं, लेकिन अधिकांश चीजें दूसरों के प्रकाश से प्रकाशित हैं एवं उनका स्वयं का कोई प्रकाश नहीं। जैसे चंद्रमा की रोशनी को हम देखते व अनुभव करते हैं, वह उसकी अपनी नहीं है, वह सूर्य की रोशनी का ही प्रतिबिंब है। जबकि सूर्य की रोशनी से ही चंद्रमा प्रकाशित है, इसके विपरीत सूर्य स्वयं प्रकाशित हैं।

इसी तरह व्यक्ति की इंद्रियाँ, उसका चंचल मन, प्रखर बुद्धि सब अंतरात्मा के कारण चैतन्य हैं, उनका अपना कोई प्रकाश नहीं। इस तरह गायत्री महामंत्र के इस चरण का चिंतन, मनन एवं ध्यान करते हुए हम चेतनता के स्रोत से जुड़ते हैं, अपने अंतर को चैतन्य करते हैं और वहाँ स्थित होने का अभ्यास करते हैं तथा वरण करने योग्य चैतन्य एवं श्रेष्ठ प्रकाश से अपने अंग-प्रत्यंगों को चैतन्य करने का भाव भी करते हैं।

इस तरह से गायत्री महामंत्र के अनवरत जप के साथ ध्यान में ईश्वरीय सत्ता के स्व-प्रकाशित, ज्ञानवान, चैतन्यस्वरूप का चिंतन करने पर अंतर्हृदय के केंद्र में विद्यमान ईश्वरीय सत्ता का भी भाव चिंतन हो जाता है और आस्तिकता का भाव एक नए आयाम तक पहुँच जाता है जिसमें '**ईश्वर अंश जीव अविनाशी**' होने का भाव और प्रगाढ़ हो जाता है। आस्तिकता का यह भाव जितना प्रगाढ़ होगा, अनुभूतियों से सिक्त होगा, उतना ही गायत्री साधक अध्यात्म क्षेत्र में गहरा प्रवेश करता ही चला जाएगा।

तीसरे चरण में, ईश्वर के पापनाशक और दिव्य स्वरूप का वर्णन है, जिसका साधक ध्यान करता है। इस चरण में अध्यात्म विज्ञान का गहरा रहस्य छिपा हुआ है। साधक के आत्मपरिष्कार एवं आत्मिक उत्कर्ष में सबसे बड़ा अवरोध उसकी चिंतन, कल्पना एवं भाव व्यवहार के गलत अभ्यास एवं बिगड़ी आदतें रहती हैं। इनके मूल में चित्त में जड़ जमाए जन्म-जन्मांतरों के कुसंस्कार रहते हैं, जो समय-समय पर बाहर उभरकर साधक के साधनात्मक प्रयासों पर पानी फेरते रहते हैं।

गायत्री महामंत्र के इस चरण का चिंतन-मनन व अभ्यास इस महाव्याधि का उपचार है। भर्ग शब्द का उच्चारण करते हुए साधक विचार करता है कि वह स्वप्रकाशित, परम चैतन्य ईश्वरीय तेज के पापनाशक स्वरूप का ध्यान कर रहा है, उसको वरण कर रहा है, उसे धारण कर रहा है और साथ में दिन भर के बाकी पलों में साधक यदि वास्तव में स्वयं को साधने के ऐसे प्रयासों में सजग-सचेष्ट है, तो उपासना के इन पलों का यह अर्थ चिंतन उसे बहुत सार्थक प्रतीत होगा और गायत्रीसाधक की अंतश्चेतना में गहन रूपांतरण की घटना घट रही होगी।

इसी से जुड़ा अगला शब्द है—**देवस्य**। ईश्वर के जिस दिव्य स्वरूप का हम ध्यान कर रहे हैं, वही साधक के अंतःकरण में विद्यमान है, जो अधिकांशतः प्रसुप्त या आंशिक रूप से जाग्रत अवस्था में रहता है। अपने इष्ट, आराध्य के सतत चिंतन, मनन और ध्यान के साथ जब श्रद्धा, भक्ति एवं समर्पण भाव की प्रगाढ़ता के साथ साधक द्वैत

से अद्वैत की ओर बढ़ता है तब उसकी भाव संवेदना जाग्रत होने लगती है।

उसकी दिव्यता, उसका देवस्वरूप प्रकट होने लगता है। हालाँकि ये तत्काल घटित नहीं होता, इसकी अपनी प्रक्रिया एवं विज्ञान विधान है। इसी के साथ गायत्री महामंत्र का अंतिम चरण—**धियो यो नः प्रचोदयात्**, घटित होने लगता है। परमात्मा का वह दिव्य तेज हम सबकी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे। जब हमारे अंदर किसी अंश में दिव्यता का अंश जाग्रत होगा, कुछ रूपांतरण होगा, भाव-संवेदना जागेगी, तो निश्चित रूप से हम बाहर परिवर्तन के संवाहक बन रहे होंगे।

गायत्री के सिद्ध साधक के रूप में परमपूज्य गुरुदेव का समूचा जीवन इसका जीवंत जाज्वल्यमान एवं आदर्श उदाहरण था। उनके शिष्य होने के नाते हर गायत्रीसाधक से भी आशा-अपेक्षा की जाती है कि इस महामंत्र का अर्थ चिंतन करते हुए अपनी प्रज्ञा को जाग्रत करें और स्वयं श्रेष्ठ मार्ग पर आगे बढ़ते हुए दूसरों को भी सन्मार्ग पर प्रेरित करे। ❑

सिकंदर की महत्त्वाकांक्षा थी कि वह सभी देशों को जीतकर विश्वविजेता का सम्मान प्राप्त करे। उसने सेना के बल पर कई देशों पर अधिकार कर लिया।

लोग सिकंदर को क्रूर और खूनी समझकर उसके नाम से ही काँप उठते थे। एक दिन सिकंदर ने एक नगर को चारों तरफ से घेर लिया। जब उसे भूख लगी तो उसने एक मकान का दरवाजा खटखटाया। दरवाजा एक वृद्धा ने खोला। सैनिक वेश में खड़े व्यक्ति को देखकर ही वह समझ गई कि यह सिकंदर है।

सिकंदर ने कहा—"मैं भूखा हूँ, कुछ खाने को दो।" वृद्धा अंदर गई और कपड़े से ढकी थाली लेकर लौटी। सिकंदर ने कपड़ा हटाया तो भोजन की जगह सोने के जेवर देखकर बोला—"इनसे मेरी भूख कैसे मिटेगी?"

वृद्धा ने निर्भीकता से कहा—"यदि तुम्हारी भूख रोटियों से मिटती तो तुम अपना देश छोड़कर यहाँ संपत्ति लूटने क्यों आते। मेरे जीवन भर की कमाई का यह सोना ले जाओ, पर मेरे नगर पर आक्रमण न करो।" वृद्धा के शब्दों ने सिकंदर को झकझोर दिया। उसने वृद्धा से क्षमा माँगी। वृद्धा ने उसे भरपेट भोजन कराया। सिकंदर उस नगर को जीते बिना ही वापस चला गया।

सत्यमेव जयते

सत्यमेव जयते

सत्यमेव जयते, मानव चेतना के मर्मज्ञ वेद-उपनिषद् काल के ऋषियों द्वारा दिया गया स्वर्णिम सूत्र हजारों वर्षों से भारतीय मानस मंडल में गुंजायमान रहा है और तमाम तरह के झूठ, पाखंड, असुरों की मायावी कुचालों के बीच गगनमंडल पर दीप्त सूर्य भास्कर की भाँति हर सत्यान्वेषक एवं सत्यनिष्ठ साधक को आश्वस्त करता रहा है कि झूठ का अंधकार कितना भी सघन एवं सर्वग्रासी क्यों न हो, जीत अंतत: सत्य की ही सुनिश्चित है।

यह हर व्यक्ति, समूह, समाज, देश एवं संस्कृति की सत्य कथा है, सदियों की अनुभूतियों से सनी रोमांचक गाथा है। विश्व भर की संस्कृतियाँ आईं और गईं, लेकिन भारतीय संस्कृति इसी सत्य के बल पर आज भी काल के भाल पर अपनी गौरव गाथा की कहानी बयाँ कर रही है। इसको कितने आघात सहने पड़े, अनगिनत रक्तरंजित पलों से गुजरना पड़ा।

विदेशी आक्रांताओं के विप्लवी प्रवाह के बीच कितनी बार लगा कि इसका अस्तित्व समाप्त हो चला, लेकिन धर्म और सत्य में प्रतिष्ठित इसकी कालजयी चेतना की अंतर्धारा सदैव प्रवाहित रही और अंतत: अतुलनीय त्याग, बलिदान से भरे दुर्द्धर्ष संघर्ष के पश्चात 15 अगस्त, 1947 के दिन देश राजनीतिक स्वतंत्रता को प्राप्त हुआ।

पिछले कई दशकों में तमाम तरह के संघर्षों के बीच भारत को गुजरना पड़ा। बीच में तो यहाँ तक लगा था कि पुन: जैसे अँधेरा इसे ढकने वाला है, देश में तब किसी तरह के नेतृत्व का सर्वथा अभाव दिखा, तब लगता था कि जैसे देश भगवान भरोसे चल रहा है और विश्व पटल पर देश एक दयनीय अवस्था में खड़ा दिखता था। यह देश का संक्रमण काल था और आंतरिक संगठन का काल था।

इसके उपरांत पुन: देश का संस्कृति सत्य जिस प्रखरता के साथ उभरा है, उससे प्रतीत होता है इसके सत्य का सूर्य विश्व के गगनमंडल पर लालिमा के साथ आश्वस्त करने लगा है कि अगला दशक भारत का है एवं ज्ञान-विज्ञान से लेकर संस्कृति एवं धर्म-अध्यात्म क्षेत्र में भारतवर्ष को अपनी उसी गौरवमयी भूमिका में विश्व का मार्गदर्शन करना है, जैसा कभी वह जगद्गुरु के रूप में करता आया है।

यही हर समूह, समाज एवं व्यक्ति की कहानी है। जीवन में सत्य का साधक कभी असत्य के अंधकार से नहीं घबराता, न ही हार मानता है, बल्कि झूठ का हर प्रहार उसे अपने सत्य के प्रति और सुदृढ़ एवं एकजुट करता है, जबकि झूठ का आवरण अधिक देर तक टिका नहीं रह सकता। काल की अग्नि परीक्षा की घड़ियों में उसकी कलई उतरते देर नहीं लगती। साथ ही झूठ एवं अधर्म भीतर से सदैव दुर्बल होता है, भयाक्रांत रहता है।

कहावत भी है कि 'झूठ के पाँव नहीं होते' और फिर एक झूठ को छिपाने के लिए सौ झूठ बोलने पड़ते हैं। इस तरह झूठ अपने ही चक्रव्यूह में फँस जाता है और अपने अंतर्विरोधियों के दबाव में देर-सवेर ढेर हो जाता है। यदि झूठ, अधर्म, असुरता, धूर्तता का साम्राज्य फल-फूल रहा है, तो समझो कि अभी उसके पुण्य प्रबल हैं और शोषित के पुण्य क्षीण हैं। झूठ अपने कुकर्मों की अंतहीन

शृंखला के साथ अपने पुण्यों को तीव्रता से क्षय करता है। फिर कहावत है कि जब पाप का घड़ा भरता है तो उसका फूटना तय है।

इस तरह झूठे एवं अधर्मी कर्म अधिक देर तक सत्य की सत्ता पर शासन नहीं कर सकते। फिर सत्य जब संगठित होता है, एकजुट होता है, तो उसके सामने झूठ का धराशायी होना तय है। भारतवर्ष की दीर्घकालीन गुलामी के गर्भ में झाँककर देखें तो यही सत्य स्पष्ट होता है।

उत्तरी सीमा से विदेशी आक्रांताओं का प्रवेश तभी संभव हो पाया, जब क्षेत्रीय राजा स्वयं में ही लड़ रहे थे। फिर भितरघातियों ने भी इनके प्रवेश में सहायता की।

पृथ्वीराज चौहान को हराने में जयचंद की गद्दारी को कौन नहीं जानता। मुगलों का भारतभूमि पर शासन भी अपनी तमाम तरह की अधर्मी, शातिर, क्रूर नीतियों के बावजूद सैकड़ों वर्ष चला, लेकिन पंजाब में सिक्ख गुरुओं तथा दक्षिण में वीर मराठाओं के सत्य एवं धर्मयुक्त संगठित विद्रोह के समक्ष उनका सैन्य बल, शासन बल सभी फीके पड़े।

मध्यकाल में भक्ति आंदोलन की अंतर्धारा इस सत्य एवं धर्म की चेतना को भीतर-ही-भीतर पोषित करती आई और विकट समय में जनता को जीने का सहारा प्रदान करती आई तभी काल के थपेड़ों के बीच मुगल सत्ता का भी अवसान हुआ।

भारत में व्यापार करने आई ब्रिटिश इंडिया कंपनी भारतीय रजवाड़ों की आंतरिक दुर्बलता एवं अंतर्विरोधों के चलते धीरे-धीरे देश पर कब्जा कर पाई, लेकिन सत्य एवं धर्मचेतना के आधार पर प्रवाहित सांस्कृतिक नवजागरण की लहर, विदेशी हुकूमत को उखाड़ फेंकने का जज्बा देशवासियों में आरोपित कर गई।

आश्चर्य नहीं कि स्वतंत्रता संग्राम में देश की खातिर अपना सर्वस्व निछावर करने का जज्बा युवाओं में, हर नागरिक में इसी धर्मचेतना के आधार पर आया था, जो भारत को महज मिट्टी का टुकड़ा नहीं, बल्कि माँ मानता था।

इस आंदोलन की नींव जहाँ स्वामी विवेकानंद के आग्नेय विचारों के साथ थी तो वहीं श्रीअरविंद इसको हवा देने वाले क्रांतिदूत महानायक थे।

उनके शब्दों में भारत पर पहले मुगल एवं बाद में अँगरेजों का शासन ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था के अंतर्गत घटित एक सूक्ष्म घटना थी, जो सदियों से तमस् से जकड़ी देश की चेतना को जगाने के लिए भेजे गए दैवी हंटर थे, लेकिन जब राष्ट्र की धर्म-अध्यात्म की अंतर्धारा जीवंत-जाग्रत हुई तो उसने विदेशी हुकूमत को उखाड़ फेंका; जिसमें अनगिनत लोगों के अकल्पनीय त्याग, बलिदान और संघर्ष का योगदान रहा।

प्रत्यक्ष कुछ चेहरे चमकते दिखे, लेकिन गुमनामी के अँधेरे में नींव का पत्थर बनकर कितने ही वीर सपूत स्वतंत्र भारत के भव्य भवन का आधार बने। हर जिम्मेदार व स्वाभिमानी देशवासी का ऐसे में यह कर्त्तव्य बनता है कि वह अपने पुरखों के त्याग-बलिदान व तप की गाथाओं को याद रखे। साथ ही चारों ओर व्याप्त असुरता के अंधकार से न घबराएँ। अपने अंतिम चरणों में इसकी कालिमा अपने आसुरी अट्टहास के साथ पुरजोर प्रहार करने वाली है, लेकिन जीत सत्य की, धर्म की होनी तय है।

यह काल की दीवार पर लिखा गया महासत्य है, शाश्वत तथ्य है, जिसका उच्चारण करते हुए हर सत्यनिष्ठ नागरिक को अपने तप, त्याग, सत्य एवं धर्म के भाव को और प्रचंड करते हुए धर्म की स्थापना के इस महायज्ञ में अपना भावभरा योगदान देते हुए सत्य की इस अंतिम जीत का साक्षी बनना है। ❑

वृत्ति

वृत्ति एक बहुत सुंदर शब्द है। इसका तात्पर्य मनुष्य को प्रेरित करती उन सभी मान्यताओं एवं अभिरुचियों से है, जो कि उसके व्यक्तित्व का निर्माण करें एवं उसके जीवन को किसी विशेष दिशा में प्रेरित करें। वृत्ति माने विचार, वृत्ति माने संवेदना। वृत्तियों की ही उपस्थिति से मनुष्य किसी-न-किसी प्रकार आगे बढ़ता एवं अपनी अभिरुचियों एवं उद्‌देश्यों के अनुरूप अपने जीवन का निर्माण करता है।

वृत्ति न हो तो मनुष्य किसी भी दिशा में प्रगति करने एवं मनोवांछित परिणाम उपस्थित करने में समर्थ न हो। वृत्तियों का ही समुच्चय यह संसार है तथा इसका निर्माण वृत्तियों के ही आधार पर हुआ है। वृत्तियों से ही मनुष्य प्रेरणा प्राप्त करता है तथा वृत्तियों की उपस्थिति इसके जीवन को हर प्रकार से आलोकित किए हुए है।

वृत्तियों की दशा एवं दिशा का निर्धारण मनुष्य का मन करता है तथा इस मन को ही साध लेने की कला को हम साधना कहते हैं। वृत्तियों का शांत होना ही व्यक्ति में गुण-कौशल के विकास का एकमात्र साधन है तथा वृत्तियों की तिलमिलाहट मनुष्य जीवन को नरक सदृश एवं अपरिपक्व मान्यताओं से भर देने के लिए पर्याप्त है।

इस संसार में विचरण करने के दो ही तरीके हैं—एक वृत्तियों का पोषण स्वार्थ की दिशा में, अहंकार के परिपोषण में एवं अपनी मान्यताओं में किसी प्रकार की परिष्कार की भावना से अनभिज्ञ बने रहने में है; दूसरा अपने अहंभाव को तिरोहित कर, एक सुस्पष्ट जीवन-नीति पर चलने में है।

जिसने वृत्तियों का यह विज्ञान जान लिया कि वृत्तियाँ आती कहाँ से हैं एवं उन्हें किस प्रकार अपने उद्‌देश्य के अनुरूप सुगठित किया जाए, वही व्यक्ति जीवन को सार्थक दिशाधारा देने में सक्षम होता है अन्यथा तो सारी दुनिया इसी फेर में लगी हुई है कि वृत्तियों को शांत करने का उपाय किस प्रकार बहिर्जगत् में ढूँढ़ा जाए एवं अपने प्रयोजनों में निर्धारित सफलता प्राप्त की जाए।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥

अर्थात धर्म के आठ मार्ग हैं—यज्ञ करना, स्वाध्याय करना, दान देना, तप, सत्य, धैर्य, क्षमा और निर्लोभ का पालन करना।

कटु सत्य यह है कि वृत्तियाँ कभी भी बाहरी विषय-वस्तु से शांत नहीं होतीं तथा उनका प्रयोजन सदा मनुष्य को किसी-न-किसी कार्य में लगाने का ही होता है। यहीं पर वृत्तियों की वह पहचान भी स्पष्ट होती है, जिसमें वृत्तियाँ किसी प्रकार के अज्ञान एवं विषय-वासना से ग्रसित नहीं, बल्कि मनुष्य की दैवी प्रवृत्ति एवं उसके पारमार्थिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन्हें ही आत्मवृत्ति भी कहते हैं। ❑

संतुलन एवं प्रगति का राजमार्ग

जीवन की घोर अनिश्चितताओं के बीच भी निश्चित एवं निर्द्वंद्व भाव एक आदर्श स्थिति है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञता के रूप में इसी स्थिति का वर्णन किया गया है। **योगः कर्मसु कौशलम्** और **समत्वं योग उच्यते** के रूप में यहाँ इसी स्थिति का उपदेश दिया गया है। यही जीवन जीने की कला का सार है। जीवन का कुशल खिलाड़ी उसे माना जाएगा, जिसने जीवन के विषम प्रवाह के मध्य भी एक संतुलन बनाकर जीना सीख लिया हो।

यह भी सच है कि जीवन के सांसारिक स्वरूप में अनिश्चितता ही अधिक प्रतीत होती है, जिसके मध्य निश्चितता की स्थिति दूर की कौड़ी लगती है। जीवन का हर प्रवाह व्यक्ति को उसके केंद्र से बाहर धकेलने के लिए तत्पर दिखता है और यही उसके विवेक, पुरुषार्थ एवं मानव होने की परीक्षा भी है एवं उसके उच्चतर विकास की आधारभूमि है। संभवतः ईश्वर ने इसीलिए मनुष्य को विशेष शक्तियों एवं क्षमताओं के साथ संपन्न कर धरती पर भेजा है।

किसी ने ठीक ही कहा है कि जीवन का असली खिलाड़ी वह है, जो व्यक्तित्व को बिखेरने वाले, इसको तोड़ने वाले, इसको नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए तत्पर हर विषम प्रवाह के बीच भी अपने संतुलन, समता और ध्येयनिष्ठा को बनाए रखता हो। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में हलचल एवं उथल-पुथल से भरे इस जीवन प्रवाह के बीच अपने केंद्र की ओर बढ़ना ही वास्तविक रोमांच है, साधना-पथ है। जो एक बार केंद्र में स्थित हो गया तो समझो उसने जीवन की मंजिल पा ली। फिर वह द्रष्टा भाव के साथ जीवन का वास्तविक आनंद ले पाता है।

इसी स्थिति में जीव, शिव के साथ एक हो कर, नर-नारायण के सान्निध्य में जीवन लीला को एक खेल की भाँति देख-समझ पाता है और जीवन की घोर अनिश्चितता के बीच भी निश्चित एवं निर्द्वंद्व भाव में विचरण करता है। यही कर्मयोग का आदर्श है, भक्तियोग का अभीष्ट है, ज्ञानयोग की सिद्धि है, ध्यान योगी की सहज समाधि का सार है। इस सहज आनंद की अवस्था में व्यक्ति इस जगत् में एक वरदान की भाँति ईश्वरीय प्रवाह का यंत्र बनकर जीता है।

इसी अवस्था में गुरु गोविंद सिंह जी के मुखारविंद से शब्द फूटे, **मैं परमपुरख को दासा, देखन आयो जगत तमाशा**। परमपूज्य गुरुदेव इसी अवस्था में ईश्वर को, अपने गुरु को अपने मास्टर के रूप में अपने आगे-पीछे और साथ अनुभव करते हैं और महाकाल के अग्रदूत के रूप में समूची मानवता को युग परिवर्तन के, 21वीं सदी उज्ज्वल भविष्य की रूपरेखा एवं विश्वास विरासत में देकर युग को निहाल कर जाते हैं, लेकिन परिधि से केंद्र की यह यात्रा इतनी सरल भी नहीं।

यह समयसाध्य है और कष्टसाध्य भी। यह व्यक्ति से ईमानदार प्रयास-पुरुषार्थ की माँग करती है। आंतरिक भ्रम-भटकाव एवं प्रलोभनों के बीच साहस भरी दूरदर्शिता की अपेक्षा करती है और जीवन का वास्तविक रोमांच और सार्थकता का भाव इसी मनोदशा के गर्भ में छिपा है और इसके

लिए हमें जीवन में अपने नियंत्रण की परतों को समझना भी आवश्यक हो जाता है।

इस संदर्भ में, जीवन को मोटेतौर पर दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। एक वह जिस पर हमारा सीधा नियंत्रण है, जैसे हमारे विचार, भाव, व्यवहार और प्रतिक्रियाएँ।

दूसरा वे जिन पर हमारा सीधा नियंत्रण नहीं है, जैसे दूसरों के विचार, व्यवहार, मौसम जैसी बाहरी परिस्थितियाँ एवं मृत्यु जैसी जीवन की अटल संभावनाएँ आदि। इस भेद की समझ हमें इसमें सहायता करती है कि हम कहाँ अपने समय, ऊर्जा व मनोयोग का नियोजन करें तथा कहाँ अधिक चिंता न करते हुए शांत रहें।

इस सूझ के आधार पर हम बाहरी परिस्थितियों पर अपनी प्रतिक्रिया को नियंत्रित करते हुए, अपने वर्तमान में केंद्रित रहते हुए, अपने कर्त्तव्य कर्म को करते हुए भविष्य को सँवार सकते हैं और अपने नियंत्रण की सीमा को बढ़ाते हुए नियंत्रण से बाहर की चीजों, परिस्थितियों व व्यक्तियों से जुड़ी चिंता व अवांछनीय प्रभावों को निरस्त करते हुए आगे बढ़ सकते हैं।

जो इस समझ को विकसित नहीं कर पाते, वे इस स्थिति में हाथ-पर-हाथ धरकर प्रतिकूलताओं का रोना रोते रहते हैं और शिकायत से भरे हुए मिलते हैं। कुछ अनुकूलता के इंतजार में ख्याली पुलाव पकाते रहते हैं। यह कुछ ऐसी स्थिति होती है, जहाँ कोई पथिक नदी के किनारे बैठकर नदी की लहरें गिनता रहे और पार होने का इंतजार करता रहे। फिर लहरें नदी की हों या सागर की या जीवन की—वे कब किसी के इंतजार में ठहरी हैं।

ऐसे में कोई कोलंबस बनकर सागर को पार करने की ठानता है। स्वयं ही नहीं, पूरे दल को सोने की चिड़िया भारत की खोज के लिए प्रेरित करता है और समुद्री यान पर निकल पड़ता है। सागर की समस्त अनिश्चितताओं को चीरता हुआ वह अपने लक्ष्य का संधान करता है। यह बात दूसरी है कि भारत की खोज में निकला कोलंबस अमेरिका पहुँचता है।

यहाँ प्रश्न व्यक्ति की इच्छाशक्ति एवं आंतरिक चाहत का भी है। हमारी चाह में कितना दम है, यह माने रखता है। साथ ही हम कितनी कीमत चुकाने के लिए तैयार हैं, यह भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ मात्र कुतूहल से काम चलने वाला नहीं, जो हर पल अपनी चाहत को बदलता फिरता हो। ऐसी दिवास्वप्न भरी मन:स्थिति के साथ व्यक्ति एक पेंडुलम की भाँति इधर-उधर झूलता भर रहता है, लेकिन पहुँचता कहीं नहीं। ये शेखचिल्ली के ख्याली पुलाव व हथेली पर सरसों उगाने जैसे बचकाने उपक्रम साबित होते हैं। मात्र जिज्ञासा से ही काम चलने वाला नहीं, जो प्रतिकूलता के थपेड़े खाकर बिखर जाती हो।

जो कीमत चुकाने के लिए तैयार न हों, जो सत्यता, श्रेष्ठता एवं अच्छाई की शक्तियों पर विश्वास न करते हों और जीवन के राजमार्ग से अधिक पगडंडियों में तुरत-फुरत आगे बढ़ने की फिराक में रहते हों। जो सत्य व धर्म के कठोर पथ के बजाय जोड़-तोड़ व तिकड़म में अधिक विश्वास करते हों। जीवन-साधना का पथ इस मनोदशा में संधान करना संभव नहीं रहता। ऐसे व्यक्ति केंद्र की ओर बढ़ने के बजाय परिधि में ही अटक जाते हैं और काल के थपेड़ों के बीच अपने जीवन लक्ष्य संधान से चूक जाते हैं। अनिश्चितता के मध्य आगे बढ़ने के लिए अंतर में उत्कर्ष की गहनतम इच्छा, दृढ़ संकल्प एवं अटल विश्वास का होना आवश्यक है।

प्रश्न एक ही है कि हम अपने आदर्श, अभीष्ट सपने के लिए क्या कीमत चुकाने के लिए तैयार हैं और जब प्रश्न जीवन-मरण का हो जाता है तो पथिक के प्रयासों में जैसे पंख लग जाते हैं। जब अपने सत्य, विश्वास और ध्येय के प्रति अंतर में अग्नि धधक रही होती है तो फिर वह व्यक्ति अपने लक्ष्य से अधिक दूर नहीं रहता।

ऐसे में अग्नि की लौ की भाँति अदम्य अंतश्चेतना लक्षित ध्येय की ओर सनसनाते तीर की भाँति अग्रसर होती है, जिसे फिर विश्व की कोई शक्ति बढ़ने से रोक नहीं सकती, बल्कि ब्रह्मांड की समस्त शक्तियाँ ऐसी एकांतिक अभीप्सा के पक्ष में खड़ी होकर अपने अजस्र अनुदान से उसे निहाल करती हैं। व्यक्ति की इच्छा जब विराट से मिल जाती है, तो फिर युग परिवर्तनकारी परिणाम के चमत्कार घटित होने प्रारंभ होते हैं और व्यक्ति ईश्वरीय चेतना का संवाहक बनकर इस धरा पर विचरण करता है। सार रूप में अनिश्चितता की आँधियों के मध्य दीया बनकर जलने की उक्ति यहीं चरितार्थ होती है। विषम परिस्थितियों के भाल पर मन:स्थिति की जय इन्हीं पलों में होती है और व्यक्ति आत्मजय के आधार पर बाह्य विजय के पथ पर अग्रसर होता है और सकारात्मक परिवर्तन का संवाहक बनकर आत्मसंतोष के साथ लोक-सम्मान का भी सहज अधिकारी बनता है। ❑

एक मजदूर बहुत गरीब था। वह अपनी गरीबी के लिए ईश्वर को दोष देता रहता था। एक दिन वह व्यक्ति किसी का सामान ढोकर ले जा रहा था। उसके पैरों में जूते भी नहीं थे। गरमी बहुत थी। गरमी से व पैर जलने से वह बहुत झुँझलाकर दु:खी होता हुआ बोला—''ईश्वर भी कैसा अन्यायी है, हम गरीबों को जूते पहनने लायक पैसे भी नहीं दिए।''

मजदूर की बात सुन कर वह व्यक्ति खामोश रहा। तभी उस व्यक्ति ने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके पैर नहीं थे, वह तपी हुई जमीन पर घिसटकर चल रहा था।

यह देखकर वह व्यक्ति मजदूर से बोला—''तुम्हारे पास तो जूते नहीं हैं, पर इस व्यक्ति के तो पैर ही नहीं हैं। तुमसे ज्यादा कष्ट तो इसे होगा। तुम्हें अपनी गरीबी के लिए ईश्वर को दोष देने के बजाय अधिक मेहनत करनी चाहिए। ईश्वर ने किसी के साथ अन्याय नहीं किया। इनसान अपने कर्मों के अनुसार ही सब पाता है।'' उस व्यक्ति की बातों का मजदूर पर गहरा असर हुआ। वह उसी दिन से अधिक मेहनत करने लगा।

मानवीय गरिमा को पहचानें

अपने रूप—लावण्य और यौवन पर सदैव गर्व करने वाली महारानी उब्बरा अचानक बीमार पड़ गईं। उनकी बीमारी दूर करने को कई वैद्य बुलाए गए, पर उनकी बीमारी दूर नहीं हो पाई। वह रत्नजड़ित रेशमी गद्दों पर पीड़ा के मारे दिन-रात करवटें बदलती रहतीं, पर पल भर के लिए भी न तो उनकी आँखों में नींद आती और न ही पीड़ा से राहत मिलती।

वैद्यों के अनुसार बीमारी इलाज से परे हो चुकी थी, अस्तु न केवल स्वयं उब्बरा वरन उनके सगे-संबंधी भी अब ईश्वर से शीघ्र ही उनके प्राण हर लेने अथवा स्वस्थ कर देने की प्रार्थना कर रहे थे। उब्बरा अन्न-जल भी ग्रहण करने की स्थिति में नहीं रह गई थीं। कुछेक दिनों के बाद ही उनकी मृत्यु हो गई। रानी के प्राणांत से सारे राजमहल और पोतली नगर में शोक छा गया।

पूरे काशीराज्य में लोग रानी की मृत्यु का शोक करने लगे। राजा को वह प्राणों से भी प्यारी थी। उसके न रहने से वे भी बेसुध पड़े हुए थे। वे जब कभी भी होश में आते तो रानी के रूप-लावण्य तथा उनसे जुड़ी यादों को यादकर विलाप करने लग जाते और फिर मूर्च्छित हो जाते।

रानी के शोक में राजा ने अन्न-जल का भी त्याग कर दिया। उधर रानी के मृत शरीर का अभी भी अंत्येष्टि संस्कार नहीं हो पाया था। जब अनेकों प्रयत्न करने पर भी राजा को चेत न हुआ तो रानी के मृत शरीर को सुरक्षित रखने के लिए मंत्रियों ने उसे तेल की नाव में रखवा दिया; क्योंकि राजा की आज्ञा के बिना उसका दाह-संस्कार कौन करता? यदि किसी प्रकार संस्कार कर भी देते तो रानी के शरीर के प्रति आसक्त राजा के मस्तिष्क में विकृति आने का भय भी तो था।

कई दिन बीत गए। राजा रानी के वियोग में रोते-चिल्लाते, बड़बड़ाते और विलाप करते। सगे-संबंधियों से लेकर मित्र, आचार्य, पुरोहित, कुलगुरु सबने इस शरीर की अनित्यता और संस्कारोंवश आत्मा के आवागमन की बातें समझाईं, पर राजा कुछ भी समझने को तैयार नहीं होते और पुनः विलाप करने लग जाते। इस प्रकार राजा को रोते एवं विलाप करते कई दिन बीत गए। राजा न तो कुछ खाते-पीते न ही सोते। इससे राज्य के मंत्रियों और परिवारजनों को बहुत चिंता हुई।

उसी समय बोधिसत्व हिमालय पर तपस्वी की भाँति विचरण करते थे। हिमालय से ही जंबूद्वीप का अपनी दिव्यदृष्टि से निरीक्षण करते समय बोधिसत्व को शोकाकुल राजा की स्थिति का पता चल गया और उन्हें राजा पर दया आ गई सो उन्होंने राजा की तत्काल सहायता करने का निश्चय किया। उनको योगबल से काफी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ प्राप्त थी हीं, सो वे तुरंत आकाश में उड़कर राजा के बाग में उतर आए और एक पत्थर की शिला पर बैठ गए।

उनके मुखमंडल पर तपस्या का तेज प्रकट हो रहा था। उन्हें देखकर कोई भी उनके दिव्य आत्मा, महात्मा होने का अनुमान सहज ही लगा सकता था। उसी समय पोतली निवासी माणवक नामक एक ब्राह्मण किसी कार्यवश उस उद्यान में गया, जहाँ महात्मा बोधिसत्व बैठे थे। माणवक बोधिसत्व

के तेज को देखकर अचंभित हो गया और उन्हें दिव्य पुरुष जानकर प्रणाम किया।

बोधिसत्व ने तो अपने योगबल से ही उससे बात करने के लिए उसे उद्यान में आने को प्रेरित किया था सो उसके आते ही बोधिसत्व ने माणवक से पूछा—"यहाँ का राजा कौन है ? और राजधानी में इस प्रकार शोक और निस्तब्धता क्यों छा रही है ?" माणवक ने कहा—"भंते! यहाँ का राजा अस्सक है। अपनी पटरानी की मृत्यु के शोक में विकल, वह विलाप करता हुआ पड़ा है। खाना पीना-सोना सभी छोड़कर वह अपने भी प्राण गँवाने की तैयारी कर रहा है। उसी के शोक से इस नगर में भी स्तब्धता और शोक का वातावरण छाया हुआ है।"

फिर बोधिसत्व बोले—"क्या राजा धार्मिक है ? क्या उसका प्रजा के प्रति व्यवहार पुत्रवत् है ? क्या वह प्रजा की रक्षा और भलाई के लिए सदैव तत्पर रहता है ?" माणवक ने कहा—"हाँ भगवन्! राजा धार्मिक है और अपनी प्रजा को पुत्रवत् मानता है। वह प्रजा की भलाई के लिए सदैव तत्पर रहता है, पर अपनी पत्नी की मृत्यु के कारण वह पत्नी के वियोग में अपनी सुध-बुध खो बैठा है और वह अपनी पत्नी के मृत शरीर को अभी भी स्वयं से दूर नहीं होने देना चाहता। इसलिए उसने उसके मृत शरीर को अभी भी तेल की नाव में सुरक्षित रखवाया हुआ है।"

माणवक ने आगे कहा—"आज सात दिन से उसने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया है। आप महापुरुष हैं, महात्मा हैं। आप हमारे राजा को इस कष्ट से, इस शोक से मुक्त क्यों नहीं कर देते ? आप जैसे महापुरुष, महात्मा के होते हुए राजा अज्ञानी की भाँति इस प्रकार कष्ट और शोक में डूबा रहे और अपने प्राण तक त्यागने को तत्पर हो, यह उचित तो नहीं। आप अवश्य ही उनको ज्ञान का उपदेश करके दु:ख से छुड़ाइए।"

बोधिसत्व बोले—"हे ब्राह्मण! मैं राजा को नहीं जानता और न ही मैं राजमहलों में जाता हूँ। यदि राजा स्वयं आकर हमसे मिले और पूछे तो हम उनकी भार्या के जन्म ग्रहण करने का स्थान बतला कर उससे राजा की बातचीत करा देंगे।"

माणवक ने तुरंत कहा—"भंते! तो जब तक मैं अपने राजा को समझा-बुझाकर यहाँ लेकर आऊँ, तब तक आपको यहीं रुकना होगा।" बोधिसत्व बोले—"अवश्य! आप राजा को लाइए, तब तक मैं यहीं विश्राम करता हूँ।" बोधिसत्व से वचन लेकर माणवक राजा के पास गया और सारा वृत्तांत सुनाकर राजा से तुरंत महात्मा जी के पास चलने की प्रार्थना की और कहा—"वे एक ऐसे महात्मा हैं, जिन्हें दिव्यदृष्टि प्राप्त है और अपने योगबल से वे आपको रानी से मिलवा कर बात भी करा सकते हैं। आपको ऐसे महात्मा से मिलकर अवश्य लाभ उठाना चाहिए।"

माणवक की बातें सुनकर राजा में मानो नूतन प्राण का संचार हुआ। महात्मा के योगबल और दिव्यदृष्टि की बातें सुनकर वे प्रसन्न हुए और पैदल ही उनके पास जाने को तैयार हो गए, पर कई दिनों से शोकातुर पड़े रहने के कारण और अन्न-जल न लेने के कारण अत्यंत निर्बल हो जाने के कारण वे चल पाने में समर्थ नहीं थे, अस्तु सबने उन्हें सवारी पर जाने को तैयार किया। पालकी में सवार होकर राजा, माणवक और राज्यकर्मियों के साथ उस उद्यान में पहुँचे, जहाँ बोधिसत्व बैठे उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

राजा ने पहुँचते ही बोधिसत्व को प्रणाम किया और आतुरता से निवेदन किया—"भगवन्! क्या आप सचमुच यह बात जानते हैं कि देवी उब्बरा

कहाँ है ? उसने कहाँ जन्म लिया है ?'' बोधिसत्व बोले—''हाँ महाराज! मैं जानता हूँ कि उब्बरा ने कहाँ जन्म लिया है। यही नहीं, मैं उससे आपको मिलवा भी दूँगा और उससे आपकी बात भी करवा दूँगा।''

बोधिसत्व की बातें सुनकर राजा विचारों के उतार-चढ़ाव में बहने लगे। उब्बरा के प्रेम में अतीत की बातों का स्मरण करके उससे मिलने के लिए आतुर हो उठे और बोले—''महात्मन्! आप मुझे शीघ्र बताइए कि महारानी उब्बरा ने कहाँ जन्म लिया है ? मुझे उससे ढेर सारी बातें करनी हैं। मुझे उससे यह भी जानना है कि वह अचानक मुझे छोड़कर इस जीवन से क्यों चली गई ? उसे तो मैंने कभी किसी चीज की कमी नहीं होने दी। मैंने सदैव उसे अपने प्राणों से भी अधिक चाहा। फिर वह मुझे छोड़कर क्यों चली गई ?''

राजा की आकुलता, आतुरता और व्याकुलता देखकर बोधिसत्व बोले—''राजन्! अपने रूप-लावण्य और यौवन के मद में रहने और सदा भौतिक विषय-भोगों में लिप्त रहने के कारण उसने मानवीय जीवन की गरिमा और भगवत्प्राप्ति के मुख्य ध्येय की ओर कभी भी ध्यान नहीं दिया। वह अपने रूप-लावण्य और यौवन को ही नित्य मानती रही और अपनी देह में भगवद्अंश के रूप में विराजमान आत्मा के उत्थान के लिए कभी कोई प्रयास नहीं किया।

''प्रमादवश और कुछ पूर्वजन्म के कुसंस्कारों के कारण भी वह अपने जीवन में कोई अच्छे कार्य नहीं कर सकी। फलत: वह अकालमृत्यु को प्राप्त हुई और मृत्यु के बाद उसने इसी उद्यान में गोबर के कीड़े की योनि में जन्म लिया है। मैं तुझे उससे अभी मिलवाता हूँ और उससे बात भी करवाता हूँ। तब तेरी समझ में आ जाएगा कि मेरी बात सही है अथवा नहीं।''

बोधिसत्व ने अपने योगबल का प्रयोग किया और दो गोबर के पिंड लुढ़कते—लुढ़कते आकर्षित हुए उनके पास आकर रुक गए। बोधिसत्व ने राजा को दिखाया—''राजन्! देखो, यह तुम्हारी उब्बरा तुम्हें छोड़ गुबरैले के पीछे दौड़ रही है।'' यह देख कर राजा दंग रह गए और बोल पड़े—''महात्मन्! मुझे विश्वास नहीं होता कि रूप-लावण्य की धनी उब्बरा ने गोबर के कीड़े की योनि पाई है ?''

तो सुनो! बोधिसत्व ने अपने योगबल से ही गुबरैली को बुलाकर पूछा—''उब्बरा! तू पूर्वजन्म में कहाँ थी ? और तेरा क्या नाम था ?'' वह गुबरैली बोली—''भंते! मैं पूर्वजन्म में अस्सक राजा की पटरानी उब्बरा थी। मैं इसी उद्यान में राजा के साथ अक्सर बैठा करती थी। उसी उद्यान में मैं उस गोबर के कीड़े की योनि में रह रही हूँ।''

बोधिसत्व ने पूछा—''उब्बरा! इस समय तुझे राजा अस्सक प्रिय हैं या यह गुबरैला ?'' वह बोली—''भन्ते! पूर्वजन्म में राजा अस्सक मेरा पति था। उसके साथ इसी बाग में मैं रूप, रस का आनंद लेती हुई विहार करती हुई, प्रेमोन्मत्त हो जाती थी। अब यह हमारा नया जन्म है। इस जन्म में पूर्वजन्म के पति राजा अस्सक से भला मेरा क्या संबंध ? ऐसे संबंध तो बनते और समाप्त होते रहते हैं। अब तो मुझे यह गुबरैला ही प्रिय है।''

गोबर के कीड़े के रूप में जन्मी उब्बरा की बातें सुनकर राजा सन्न रह गए। उब्बरा के प्रति उनकी घोर आसक्ति दूर हुई। उसके प्रति उनका मोह दूर हुआ। उनका मोहांधकार दूर हो गया। रानी उब्बरा की मृत्यु से उत्पन्न उनका शोक दूर हो गया और सांसारिक रिश्तों के सत्य और देह की नश्वरता का उन्हें बोध हुआ।

वे बोधिसत्व के चरणों में गिर पड़े और बोधिसत्व ने उन्हें ज्ञानोपदेश देते हुए कहा—"राजन्! इस संसार में कोई किसी का नहीं है। इस संसार में जितने प्राणी दिखाई दे रहे हैं, वे अपने-अपने कर्मानुसार, कर्म-संस्कारवश जन्म धारण करके नाटक के पात्रों की भाँति कार्य कर रहे हैं। समय पूरा होते ही सभी अपनी काया को पुराने वस्त्र की भाँति छोड़कर अपने कर्मों के अनुसार नई योनि को, नए शरीर को, नए वस्त्र की भाँति प्राप्त होते हैं। हर जीवात्मा अपनी निजी यात्रा पर है। यह शरीर क्षणभंगुर और अनित्य है। इससे मोह करना व्यर्थ है।

"शरीर से जुड़े सगे-संबंधियों व संसार के प्रति आसक्ति व मोह व्यर्थ हैं, पर आत्मा नित्य है। आत्मा, परमात्मा का अंश होने से अजर है—अमर है। उसका शरीर से तभी तक संबंध है, जब तक वह उस देह में है। जिस प्रकार नाटक में कोई पात्र जिस समय राजा का लिबास पहन लेता है, उस समय वह राजा बन जाता है और थोड़ी ही देर में जब वह विदूषक के कपड़े पहन लेता है, तब वह आपको हँसी से लोट-पोट कर देता है अस्तु यदि कोई भी व्यक्ति चाहता है कि उसे उब्बरा की भाँति गोबर का कीड़ा न बनना पड़े तो उसे मानवीय गरिमा का सदैव भान रहना चाहिए। उसे इंद्रिय भोगों में ही न पड़े रहकर, देह और इंद्रियसुख में लिप्त न रहकर आत्मा को पहचानना चाहिए।

"उसे अपनी आत्मा में सदैव ईश्वर का ध्यान, स्मरण करते रहना चाहिए। नित्य भगवद्स्मरण, ध्यान करते रहने से आत्मा से ही परमात्म सुख निस्सृत होता है, जिससे जीवात्मा को पूर्ण तृप्ति होती है। साथ ही व्यक्ति को चाहिए कि वह सभी प्राणियों में आत्मा के रूप में विराजमान ईश्वर का दर्शन करके प्रेम, सेवा और परोपकार आदि में मन लगाकर सदैव पुण्यकार्य करते हुए जीवन को सफल और सुखी बनाए।"

बोधिसत्व के ज्ञानोपदेश से राजा अस्सक को वास्तविक ज्ञान प्राप्त हुआ। राजा को एक नई जीवन-दृष्टि प्राप्त हुई और वे भी बोधिसत्व के बताए उपदेश के अनुसार जीवन जीने को संकल्पित हुए। उन्होंने बोधिसत्व को प्रणाम किया और राजमहल आकर तेल में डुबोकर रखे गए रानी उब्बरा के मृत शरीर को निकालकर मिट्टी की भाँति उन्होंने उसका संस्कार किया और अनासक्त भाव से राज्य करने लगे। ❑

हजरत अबूबकर मदीना के खलीफा थे। वे सदैव दीन-दु:खियों की सेवा किया करते थे। एक बार उन्हें मालूम हुआ एक वृद्धा के पास भोजन का भी कोई साधन नहीं है।

खलीफा, वृद्धा के जागने से पहले ही उसकी झोंपड़ी में पहुँचे और वहाँ सफाई की तथा उसके लिए भोजन रखकर चुपचाप लौट आए। वृद्धा ने सफाई व भोजन को देखा तो सोचा कि कोई दरियादिल व्यक्ति रख गया होगा।

खलीफा अब रोज ऐसा ही करने लगे। एक दिन बुढ़िया ने सोचा कि देखना चाहिए कि यह सब कौन व्यक्ति करता है? वह प्रातः ही जाग गई।

खलीफा के आते ही उसने दिया जलाकर देखा कि उसकी सेवा करने वाले स्वयं खलीफा हैं। उन्हें देखकर उसकी आँखों में खुशी के आँसू आ गए।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

साधना

अध्यात्म पथ की सबसे बड़ी कठिनाई समय-समय पर उठते संदेह, शंकाएँ एवं विस्मृतियाँ हैं, जिनका यदि समाधान नहीं किया गया तो वे साधक को आंतरिक रूप से जड़ एवं बाह्य रूप से अव्यवस्थित बना देती हैं। साधना का अर्थ है परम निर्मलता, अपने आंतरिक दोषों को जड़-रूप से मिटा देना एवं जो कुछ भी जीवन को पतित एवं निकृष्ट बनाए उसके विरुद्ध पूरी तत्परता से खड़े रहना।

साधना है विचार-परिष्कार द्वारा अंतरंग की दिव्य संभावना एवं वैभव की प्राप्ति। साधना है कषाय-कल्मषों के मध्य भी अपने स्वरूप एवं चिंतन-प्रणाली के प्रति सजग रह, महान निर्माण की दिशा में गतिशील होना। साधना है लुप्त पड़ी आत्मसंपदा को उच्च पद प्रदान करना, आंतरिक उत्कृष्टता द्वारा बाह्य निर्माण एवं श्रेष्ठ कर्त्तव्य की दिशा में आगे बढ़ना।

साधना का पथ निश्चित ही कठिन है, परंतु जिन्होंने अपने को साध लिया है, जो पूर्ण निश्चल भाव हो अपने द्वारा परमात्मा की सदिच्छा को पूर्ण करना चाहते हैं, जो अंतरंग की महानता को जगा कर सच्ची आत्मशांति एवं परम संतोष के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहते हैं, उन्हीं के लिए यह पथ है तथा वे ही इसकी विशिष्टता को पहचान, नए निर्माण की दिशा में बढ़ते हैं तथा विचारों से स्वयं अपनी सृष्टि का निर्धारण करने में सफल होते हैं।

इस अर्थ में साधना अपने अंतस् का परिष्कार तो है ही, साथ में वह किसी सदुद्देश्य के लिए प्राणपण से जुट अपने जीवन की आहुति देने से भी संबंधित है।

इसलिए धैर्य एवं अनुशासनपूर्वक इस साधना के विधान को अपने जीवन में अपनाना चाहिए तथा समस्त जीवन के कायाकल्प की दिशा में बढ़ना चाहिए। यही साधना की जीवन-ज्योति है तथा इसे अपनाकर व्यक्ति में अनेकानेक विशेषताएँ एवं जीवन की संपदा का सच्चा सदुपयोग करने की विशेषता पैदा होती है।

जिस भी मनुष्य ने साधना के पुण्य-पथ पर कदम बढ़ाए हैं, उसे सर्वप्रथम अंत:करण की पवित्रता एवं धैर्य की उपयुक्तता के दर्शन हुए हैं—तदुपरांत उसने आत्मिक प्रगति की उच्च सीढ़ियों में प्रवेश कर, भीतर की संपदा को पूर्ण रूप से उजागर किया है।

जब तक हम भीतर से निर्लिप्त एवं पूर्ण शांत मन:स्थिति को ग्रहण नहीं करते, तब तक वास्तविक विकास एवं सच में जीवन की उन्नतावस्था ग्रहण नहीं हो पाती तथा यही कारण है कि मनुष्य में निरंतर भौतिकता के प्रति आकर्षण बना रहता है तथा वह अपने विचार-केंद्र में सदा किसी-न-किसी मनोग्रंथि से ग्रस्त रहता है।

जिस दिन आत्मप्रसाद को ग्रहण करने का अवसर उसे प्राप्त हो गया, उस दिन यथार्थ में आदर्श चिंतन एवं उत्कृष्ट कर्तृत्व का उसे अवसर प्राप्त होता है, तथा वह पूर्ण परिष्कृत मनोभूमि प्राप्त कर वास्तविक आत्महित की दिशा में बढ़ चलता है। इसी अनुक्रम में उसे अपने दोष-दुर्भावों को त्यागने एवं अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त हो पाता है।

साधना है आदर्श के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता का भाव। अब यदि इस चिंतन को ग्रहण कर, पूर्ण रूप से सचेष्ट हो सोचा जाए, तो एक ही बात दिखाई देती हैं कि मनुष्य का बिगड़ा स्वरूप तभी सुधारा जा सकता है, जब वह अपने सच्चे आत्मगौरव को प्राप्त कर वास्तविक सफलता एवं केंद्रीभूत मनोभूमि को प्राप्त करे तथा उसे किसी भी बाह्य अवस्था या परिणाम में, अपने सच्चे स्वरूप एवं सच्ची आत्मप्रतिष्ठा का भान रहे कि आत्मा नित्य ही नवीन है, उस पर विकार एवं दूषित मान्यताएँ अपना प्रभाव छोड़ने में सफल नहीं होतीं।

जहाँ भी आत्मा का विचार एवं उसकी क्रिया-विधि पहुँच जाती है, वहीं सच्चे स्वर्ग का निर्माण एवं वास्तव में श्रेष्ठता का विकास होने लगता है। तभी शांति का सूर्योदय अपनी संपूर्ण आभा लिए, मनुष्य को नवजागरूक कर उसके जीवन के नियमन का सुपथ दिखाता है एवं तब वास्तव में मनुष्य चिर-आनंद की खोज को पूर्ण करता है एवं अपने सभी मनोभावों में उस आदर्श की स्थापना करता है, जिसने उसे इस पथ पर चलने हेतु प्रेरित किया है।

यही समता, आदर्शपरायणता एवं समग्रता में आत्मदर्शन का वह मार्ग है जिसके बल पर सच्चे मानव, सार्थक दृष्टिकोण लिए एक सशक्त व्यक्तित्व के रूप में विकसित होकर भविष्य के मार्गदर्शक बन सकते हैं तथा वे अपना संपूर्ण परिष्कार कर जीवन में महानता एवं दिव्यता का सुरम्य वातावरण बना सकते हैं।

वे कभी न डिगने वाली शांति एवं सच्चे आत्म-पुरुषार्थ को प्राप्त कर, अपने भीतर से हीनता की सभी ग्रंथियों को त्याग, एक सशक्त जीवनक्रम के अधिकारी बनते हैं तथा उन्हें मार्ग की बाधाएँ कभी धैर्य एवं साहस से पदच्युत नहीं कर पातीं। अपनी यही निष्ठा एक दिन हमें जीवन की समस्या का बोध कराती हुई, श्रेष्ठता की दिशा में अनुकूल व्यवहार करने को प्रेरित करती है। तभी हमारा जीवन सफल हो पाता है एवं हमें देव-दुर्लभ शांति की प्राप्ति भी सहज हो जाती है।

धैर्य की अमृत पूँजी से मनुष्य आत्मलाभ तो प्राप्त करता ही है, साथ में उसे विचार-निग्रह द्वारा अपनी शक्तियों के समायोजन का दिव्य पथ भी दृष्टिगोचर होता है। यदि यह हो सके तो किसी भी बाह्य परिस्थिति के होते, हम अविचल रूप से अपनी गतिविधियों को संपादित करते रह सकते हैं, एवं तब जीवन की कोई भी कठिनाई एक अवसर में परिवर्तित हो जाती है, जिसमें हमें अपनी आत्म-प्रज्ञा एवं समग्र-निष्ठा का भाव पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है। यही दिव्यनिर्माण एवं विचार-स्वातंत्र्य का वह मार्ग है, जिस पर चलकर अनेकों आत्माएँ तरी हैं एवं आगे भी तरती रहेंगी। ❑

शक्तिमानप्यशक्तोऽसौ धनवानपि निर्धनः।
श्रुतवानपि मूर्खश्च यो धर्मविमुखो नरः॥

अर्थात जो मनुष्य धर्म से विमुख होता है, धर्म का पालन नहीं करता है, वह शक्तिमान होते हुए भी निर्बल है। धनवान होता हुआ भी निर्धन है और वेदशास्त्र पढ़ने के बाद भी मूर्ख के समान है।

पर्व विशेष-रक्षाबंधन पर्व

रक्षाबंधन : एक ऐतिहासिक पर्व

भारत के त्योहार अपने इतिहास को दोहराने के लिए प्रत्येक वर्ष चले आते हैं, जो हमें नई ऊर्जा और उल्लास से भर देते हैं। प्रत्येक त्योहार का अपना-अपना इतिहास और माहात्म्य है। इन त्योहारों का अपना गौरवशाली अतीत है, जो देश-रक्षा और परिवार के प्रति दायित्व का बोध कराते हैं। उनमें एक त्योहार राखी है। सावन की बूँद धरती पर पड़ते ही राखी की स्मृति ताजी हो जाती है। जब आतंकी असुरों ने देवों की अमरावती पर कहर ढहाया था तब देवों की ओर से इंद्र ने उनसे मोर्चा लिया था।

बृहस्पति ने मंत्रशक्ति से इंद्र की कलाई में रक्षासूत्र बाँधा था, जिससे असुरों का आतंकवाद सदा के लिए मिट गया। उसी समय से रक्षाबंधन का त्योहार उमंग के साथ मनाए जाने लगा था। रक्षाबंधन को राखी का त्योहार भी कहा गया है। राखी रक्षा का अपभ्रंश शब्द है, जिसका अर्थ है राष्ट्र और समाज की रक्षा करना। धीरे-धीरे यह सांस्कृतिक त्योहार ऐतिहासिक और राष्ट्रीय त्योहार के रूप में मनाया जाने लगा है।

राजपूत शासन के पतन के बाद देश में तुर्कों के आतंक और आक्रमण का दौर चला। देश की आन की रक्षा के लिए राजपूत युवाओं ने हुंकार भरी। वे बलि वेदी पर निछावर होते गए। दिनोंदिन राजपूत वीरों की संख्या घटती गई। देश की स्वतंत्रता और अस्मिता खतरे में थी। ऐसी संकट वेला में राजपूतानी बालाओं ने एक नया अभियान चलाया 'राखी बाँधो वीरन (भाई) बनाओ' फिर क्या था? अभियान रंग लाया। बहनों के शहीद भाइयों के बदले नए वीरन मिलते गए।

वे तुर्कों के आतंक और अत्याचारों से मोर्चा लेने लगे। राजपुतानियाँ फूली नहीं समायीं। जगनिक ने अपने 'आल्हाखंड' में वीरन शब्द का प्रयोग किया है 'काला बदरिया बहिन हमारी कंधो वीरन लगे हमार, आज बरिस जा मेरी कनउज में कंता एक दिन रह जाय।'

सिक्खों में वीरन शब्द सिक्ख वीरों के लिए प्रयुक्त होता है। धीरे-धीरे यह राखी का त्योहार सामाजिक और पारिवारिक पर्व बन गया। यह त्योहार भाई-बहनों के प्रेम का प्रतीक हुआ। जिस समय गुजरात के शासक बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था, उस समय की रानी कर्मवती ने हुमायूँ के पास राखी भेजी थी। अपनी बहन की रक्षा के लिए हुमायूँ उस समय चित्तौड़ पहुँचा, जब कर्मवती जौहर कर चुकी थी। हुमायूँ ने अश्रुपूरित नेत्रों से उस चिता की राख को नमन किया था।

अनेकों शासकों ने रक्षाबंधन यानी राखी के त्योहार को जीवित रखा। सिकंदर-पुरु का वह प्रसंग बड़ा ही मार्मिक है। इस संदर्भ में सिकंदर ने पराजित पुरु से पूछा था—"तुम्हारे साथ कैसा बरताव किया जाए?" सिकंदर को तब पुरु ने करारा जवाब दिया था—"वैसा ही, जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है।" उसी साहसी पुरु के जीवन का एक मार्मिक प्रसंग है। विश्व विजय की इच्छा से सिकंदर एक के बाद एक राज्य जीतता चला जा रहा था। सिकंदर ने अपना समूचा ध्यान अपने सैन्यबल पर केंद्रित किया था।

कई देशों पर विजय हासिल करते हुए वह ईरान-अफगानिस्तान होता हुआ भारत पहुँचा। उन दिनों पंजाब क्षेत्र पर पुरु का आधिपत्य था। पुरु भी सिकंदर की ही तरह बहादुर और पराक्रमी शासक था। सिकंदर ने उसे संदेशा भिजवाया कि वह उससे संधि कर अपना राज्य दे दे, लेकिन स्वाभिमानी पुरु ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। ऐसी स्थिति में दोनों में युद्ध होना ही था। सिकंदर के सैनिकों ने पुरु के पंजाब क्षेत्र को चारों ओर से घेर धावा बोल दिया।

दोनों पक्षों के सैनिकों में घमासान युद्ध शुरू हो गया। युद्ध को देखते हुए यह कह पाना बहुत दूभर था कि विजय किसकी होगी? सिकंदर के साथ एक ईरानी युवती भी भारत आई थी। युद्ध को लगातार फैलते देख वह अनिष्ट की आशंका से बेहद चिंतित थी। रोज दोनों पक्षों के सैकड़ों सैनिक मर रहे थे। वह अपार जन-धन की हानि देखकर खिन्न थी और सिकंदर से लगातार आग्रह कर रही थी कि युद्ध खतम कर समझौता कर ले, लेकिन भला सिकंदर को यह कब मंजूर था कि वह एक हिंदू शासक के सामने झुक जाए?

एक दिन सिकंदर की प्रेमिका को यह पता चला कि भारत में राखी का त्योहार मनाया जाता है, जिसे भाई-बहन के पवित्र प्रेम का प्रतीक समझा जाता है। उस ईरानी युवती ने रक्षाबंधन के बारे में और भी जानकारी हासिल की। संयोग से रक्षाबंधन का दिन करीब ही था।

उस दिन वह ईरानी युवती एक थाली में कुछ मिठाई और रेशमी धागों के टुकड़े लेकर छिपते-छिपाते अपने शिविर से बाहर निकली और पुरु के दरबार में जा पहुँची। वहाँ उसने पुरु से भेंट की और विनम्र स्वर में कहा—"मैं आपको अपना भाई बनाना चाहती हूँ।" राजा पुरु ने उस युवती की भावनाओं को पूरा सम्मान दिया और अपनी कलाई आगे बढ़ा दी।

युवती ने राजा पुरु के हाथों पर रेशमी धागा बाँध दिया और अपने हाथों पर रखा मिठाई का टुकड़ा पुरु के मुँह में दे दिया। राजा पुरु ने उसे भेंट में कीमती वस्त्र और आभूषण दिए तथा सुरक्षा का आश्वासन भी दिया। उस युवती ने लौटते समय कहा—"महाराज! शायद आपने मुझे पहचाना नहीं, मैं एक ईरानी युवती हूँ और सिकंदर की प्रेमिका। मैं आपसे मदद माँगने आई हूँ। आपने मुझे अपनी बहन माना है आशा है, अब आप अपनी बहन के सुहाग की रक्षा करना अपना दायित्व समझेंगे।"

हतप्रभ पुरु से कुछ कहते नहीं बना। वे ठगे से खड़े रह गए और वह युवती चुपचाप वहाँ से चली गई। पुरु देर तक अंतर्द्वंद्व की स्थिति में रहे। वह फैसला नहीं कर पा रहे थे कि क्या किया जाए? एक तरफ सिकंदर, जो उनका सबसे बड़ा दुश्मन था और दूसरी ओर एक अजनबी बहन को दिया गया सुरक्षा का वायदा। युद्ध कुछ दिनों तक थमने के बाद फिर शुरू हो गया।

युद्ध में एक बार ऐसी स्थिति आई, जब पुरु सिकंदर का वध कर सकते थे। सिकंदर घोड़े पर था और पुरु हाथी पर सवार। पुरु ने जैसे ही सिकंदर पर वार करना चाहा, अचानक उन्हें अपनी अजनबी बहन से किया गया वायदा याद आ गया और पुरु के भाले थामे हाथ रुक गए। सिकंदर मृत्यु के मुँह में जाने से बच गया। बाद में सिकंदर की सेना विजयी हो गई। सिकंदर जब जीत का उल्लास मना रहा था, उसकी प्रेमिका अपने भाई की हार पर उदास थी।

राखी के कोमल धागों ने सचमुच इतिहास की दिशा भी मोड़ दी थी। अब समय आ गया है। हम सभी मिल-जुलकर राखी का त्योहार मनाएँ।

देश की रक्षा के लिए प्रतीक के रूप में राखी का पर्व मनाएँ। होली और दीवाली के साथ राखी का भी त्योहार मनाया जाए। रक्षासूत्र में दोनों भागीदार हैं।

राष्ट्रीय आंदोलन में राखी का त्योहार भारत माता की स्वाधीनता के लिए मनाया जाता था। रवींद्र नाथ ठाकुर इस अभियान के सूत्रधार थे। वे क्रांतिकारियों की कलाई में रक्षासूत्र बाँधते हुए देश की स्वाधीनता के लिए संकल्प कराते थे। सारा बंगाल बड़ी उमंग के साथ कलाइयों में राखी बँधवाता था।

देश में वीरगाथा-काल आ गया था। रक्षा बंधन की तरह महाराष्ट्र में गणपति पूजनोत्सव का त्योहार मनाया जाने लगा था, जिसके अग्रदूत—'स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का उद्घोष करने वाले बाल गंगाधर तिलक थे। वे क्रांतिकारियों की कलाइयों में रक्षासूत्र बाँधकर उनको राष्ट्र की रक्षा के लिए अभिप्रेरित करते थे।

उस समय सामाजिक क्रांति में राखी का त्योहार बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन कर रहा था। जिन बहनों के भाई नहीं थे, वे क्रांतिकारी युवकों को अपना भाई माना करती थीं। ऐसे धर्मभाई अपनी बहन के दुःख-सुख में रक्षा कवच का काम करते थे। इन भाइयों ने अपनी बहनों के रिश्ते को मजबूत रखा और उनके हाथ पीले किए तथा उनकी डोली अपने कंधों पर उठाई। इस प्रकार राखी का त्योहार युद्ध काल से गुजरता हुआ सामाजिक क्रांति के युग में आकर अपना सौभाग्य सजाने लगा।

आज आधुनिक भारत में बहनें अपने भाइयों के कंधों-से-कंधा मिलाकर विकास की ओर बढ़ रही हैं। प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में इन बहनों के भाई सक्रिय हैं। राखी का इतिहास त्याग और बलिदान के रंगीन धागों से पिरोया हुआ है। यह है—भाई-बहनों के प्रगाढ़ प्रेम का उपहार राखी का त्योहार। हमें इस त्योहार को प्राणपण से निर्वहन करने की आवश्यकता है। ❑

ऋषिगण अपनी जिज्ञासा लेकर प्रजापति ब्रह्मा के पास पहुँचे। जिज्ञासा यह थी कि ऐसा कौन-सा स्थान है, जहाँ भक्ति सहज हो जाती है।

ब्रह्मा जी ने ऋषियों को एक घूमने वाला चक्र दिया और बोले—"जहाँ यह चक्र ठहर जाए, वही स्थान आप लोगों के लिए अपेक्षित है।" चक्र घूमता हुआ चला। ऋषिगण उसके पीछे-पीछे निकले।

चक्र नैमिषारण्य क्षेत्र में आकर रुक गया। शास्त्र कहते हैं कि चक्र, मन का प्रतीक है—जैसे चक्र घूमता रहता है, वैसे ही मन भी भवबंधनों में मनुष्य को घुमाता रहता है। नैमिषारण्य—भगवान की उपस्थिति का प्रतीक है और जैसे परमात्मा की उपस्थिति में साधक, निर्विचार हो जाता है, वैसे ही नैमिषारण्य पर वह चक्र रुक गया। इसीलिए भारतीय शास्त्रों में अनेक कथा-पुराण नैमिषारण्य क्षेत्र में कहे गए बताए जाते हैं; क्योंकि वहाँ सहज ही भगवान की उपस्थिति हो जाती है।

मन की शांति

मन की शांति का सबसे बड़ा उपाय मन की त्यागमूलक वृत्ति को उजागर करना है। सबसे पहले मन को त्याग भाव में रखा जाए, उसे बाह्यजगत् से पड़ने वाली अड़चन से बचा, एकटक अंतर्हृदय में केंद्रित रखा जाए। मन की अभिलाषा होती है बाहर घूमने जाऊँ, अतः उसे बाँधकर जिम्मेदारीपूर्वक अपने वश में किया जाए। इसके बाद मन को दिशाहीन न होने देने के लिए, उसे सदा सार्थक एवं उपयोगी कार्य में लगाया जाए। इस प्रकार हम देखेंगे कि किस प्रकार हमारा मन निरंतर उद्वेगरहित होकर शांति की दिशा में बढ़ चलता है।

मन है एक विशाल सरोवर, जिसका स्रोत है मनुष्य की वृत्तियाँ। यदि वृत्तियों को रोककर उन्हें किसी आदर्श की दिशा में लगाया जाए, उनसे लाभ लेकर मन की गति एवं स्वरूप को निर्धारित किया जाए तो देखते-ही-देखते संकल्पपूर्वक मन को नियंत्रित करना एवं आत्मिक शांति को प्राप्त करना सहज हो जाता है। मन अशांत है तो इसका एक ही कारण है, मन का अज्ञान और उसका किसी प्रकार अपनी शक्ति के स्रोत से वंचित हो जाना।

मन की अंतरंग वृत्ति को जिस दिन मनुष्य समझना सीख जाएगा, उस दिन उसे अपने प्रत्येक प्रयोजन में सफलता प्राप्त होगी एवं वह निस्पृह हुआ अपने केंद्रीय लक्ष्य की दिशा में बढ़ चलेगा। प्रकाश का सूर्य ही उसकी शांति, सद्गति एवं प्रेरणा का कारण है और यह प्रकाश और कुछ नहीं, मन का आत्मा से सम्मिलन है।

इसके उपरांत उसे सत्य से विमुख होने का कोई कारण नहीं रह जाता एवं वह विचारदर्शी बन, समग्रता में सत्य का बोध प्राप्त करता है तथा उसे किसी भी प्रकार की कठिनाई अपनी भीतरी दिव्यता को उजागर करने में नहीं होती तथा वह निस्पृह एकाकी हो, अपने को हर दृष्टि से उन्नत एवं समर्थ बनाता जाता है।

मन की तरंग को अपने वश में कर लेना ही शांति का उपाय है तथा जिस मन में अपने निग्रह की क्षमता आ गई है, वह फिर दुःख-द्वंद्वों में पड़ कर अपनी क्षमताओं से विमुख नहीं होता है। मन पर पड़ने वाले कुप्रभावों को जिस दिन हम सद्विचारों से समाप्त करना सीख जाएँगे तथा सुविचार अंतरात्मा की गहन प्रेरणा से क्रियाशील होंगे, तभी हमें वास्तविकता का पथ एवं सत्य-विषय के शोध का पथ दिखाई पड़ेगा।

जब मन किसी विषयवस्तु से जा टकराता है, तब वह अपने मूल प्रयोजन को ही भुला बैठता है एवं उसे अंतर्मन की गहराई से आ रही सत्य की आवाज सुनाई नहीं देती एवं तब वह एक उपकरण न रहकर केंद्रीय उपादान बन बैठता है। यही मन की दुर्बलता एवं उसे किसी भी सत्संकल्प में न लगा पाने का कारण है। जब मन अपने सभी दोषों को त्याग देता है तो उसे वास्तव में सत्य-विषय के अनुसंधान का अवसर प्राप्त होता है एवं तब वह शांति के केंद्र, आत्मा की अमिट प्यास की ओर झुक पड़ता है।

यही परम शांति का वह मार्ग है, जिस पर हम सभी को चलना चाहिए। शांति प्राप्त करनी हो तो

उसे दोष-दुर्गुणों के परित्याग एवं अंतस् के विकास-पथ में देखा जाए, तभी वास्तव में व्यक्तित्व उस दिव्य शांति के अनुरूप घटित हो पाएगा, जिसने विश्व को सदा से प्रफुल्लित एवं आलोकित किया है।

शांति का उपाय है अपने अंतर्मन को स्वच्छ रखकर, अपने हृदय की प्यास को बुझाकर मन को एकत्वदर्शी एवं समतापरायण बनाया जाए— यही मन की दिव्यता एवं स्वरूप से तदाकारिता का विज्ञान है, जिसे प्रत्येक जाग्रत हृदय को प्रत्येक परिस्थिति में स्वीकारना चाहिए तथा उसे उजागर कर शांति एवं श्रेष्ठता के पथ पर बढ़ना चाहिए। यदि हमारे हृदय में आत्मिक शांति का वास है तो उसे किसी भी परिस्थिति में, किन्हीं भी कठिनाइयों के मध्य डिगाया नहीं जा सकेगा तथा वह परिपूर्णता में अपने विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करने में सफल हो सकेगा।

आत्मोपलब्धि एवं आत्मशांति एक ही तथ्य के दो मार्ग हैं तथा उन्हें विकसित करने एवं प्रयोग में लाने के लिए हमें विकृत विचारों से परित्यक्त होना पड़ेगा, ताकि हमारा जीवन सुख, सौंदर्य एवं शांति का पर्याय बन सके तथा उसे सुदृढ़ कार्यप्रणाली की दिशा में बढ़ने में कोई कठिनाई न हो और वह प्रत्येक कार्य सूझ-बूझ एवं नीति के साथ कर सके। यही शांति, दिव्यता एवं अनुग्रह का वह मार्ग है जिस पर चलकर महामानव गढ़े जा सकते हैं एवं उनसे विश्व की समस्याओं का निपटारा संभव हो सकता है।

शांति सदोष नहीं होती और अशांति का हमेशा कोई कारण होता है। यदि हमारे हृदय में पूर्ण स्पष्टता हो तो हम शांति को ही चुनेंगे एवं तब बाह्य जगत् हमें अपनी ही प्रकाश-किरणों का कार्य विस्तार एवं परमात्मा की अनुपम अभिव्यक्ति दिखाई देगा तथा संपूर्ण अस्तित्व एक ही दिव्य नाद से आलोकित होता दिखाई पड़ेगा। ❑

एक वृद्ध महाशय अपने बचपन के साथी श्यामजी के पुत्र रामजी के यहाँ आए। रामजी ने अपने पिता के मित्र का स्वागत-सत्कार किया और उन्हें भोजन परोसा। उन्होंने जैसे ही भोजन का एक कौर मुँह में रखा तो वे बोले—"बेटा! यह भोजन तो बासी है।" रामजी बोला—"यह भोजन तो अभी बनाकर आपको परोसा गया फिर आप इसे बासी कैसे कह रहे हैं?" वृद्ध बोले—"बेटा! मेरे मित्र श्यामजी ने कितने कष्ट से पैसा कमाया। उन्हें गुजरे एक वर्ष ही बीता है और इसी बीच तुमने आधी संपत्ति उड़ा दी। अब आगे क्या करोगे? तुम अपने परिश्रम से कमाए धन से भोजन बनवाते तो मैं उसे ताजा कहता।"

रामजी की समझ में वृद्ध की बात आ गई। उसने कहा—"मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि अब मैं श्रम करके धन कमाऊँगा और उसी से अपना व परिवार का पालन-पोषण करूँगा।" वृद्ध यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी राह चले गए।

सरस्वती नदी—एक सांस्कृतिक धरोहर एवं विरासत

ज्ञान, कला एवं विद्या की अधिष्ठात्री के रूप में सरस्वती देवी से सभी परिचित हैं, लेकिन सरस्वती नदी भी रही है, इस सत्य से बहुत कम ही लोग परिचित हैं। प्रयागराज के त्रिवेणी संगम में गंगा व यमुना नदी के साथ सरस्वती के सूक्ष्म स्वरूप में संगम की बात प्रचलित है, लेकिन इसके स्थूलस्वरूप की कल्पना नहीं हो पाती।

ऐसे ही बदरीनाथ के समीप माणा गाँव के पास सरस्वती नदी को भारी गर्जन-तर्जन के साथ प्रवाहित होते देखा जाता है, जो फिर अदृश्य होकर थोड़ी दूरी पर शांत भाव से अलकनंदा नदी में समा जाती है। इससे आगे लोकप्रचलन में सरस्वती नदी के संदर्भ में अधिक चर्चा नहीं होती; जबकि सरस्वती नदी कभी हिमालय से लेकर अरब सागर तक प्रवाहित एक जीवंत नदी रही है, जिसका वेदों व अन्य धर्मग्रंथों में प्रचुर मात्रा में वर्णन मिलता है।

वेदों में तो सरस्वती नदी की सबसे अधिक चर्चा मिलती है, जिसको पढ़कर प्रतीत होता है कि वेदमंत्रों की रचना सरस्वती नदी के पावन तटों पर ही हुई थी। आगे पुराणों से लेकर रामायण एवं महाभारत काल में भी इसके स्थूलप्रवाह के प्रमाण मिलते हैं।

कालक्रम में प्राकृतिक उथल-पुथल एवं भौगोलिक परिवर्तनों के मध्य इसका प्रवाह बाधित हुआ और क्रमशः इसका मार्ग परिवर्तित हो गया तथा आगे चलकर यह विलुप्त हो गई। आज आधुनिक शोध-अनुसंधानों के आधार पर सरस्वती नदी के अवशेष मिलने प्रारंभ हो गए हैं व इसकी खोई कड़ियाँ जुड़ती हुईं उसके अतीत की गौरव-गाथा को प्रस्तुत करने को तत्पर हैं।

पता चलता है कि इसका प्रवाह हिमालय से लेकर अरब सागर तक था और कुछ विशेषज्ञ तो आज भी इसके भूमिगत प्रवाह की बात करते हैं। यजुर्वेद में इसकी सहायक नदियों के रूप में दृषद्वति, सतुद्री (सतलुज), चंद्रभागा (चिनाब), विपासा (व्यास) और इरावती (रावी) नदियों का वर्णन मिलता है। प्रतीत होता है कि सरस्वती नदी वैदिक सभ्यता का पालना रही। ऋषियों की स्तुतियों से स्पष्ट होता है कि सरस्वती नदी के किनारे वैदिक सभ्यता पनपी।

सभ्यता के विकास के अनुरूप समस्त प्राकृतिक एवं अन्य संसाधन उपलब्ध होने के कारण वैदिक संस्कृति इसके किनारे फली-फूली। ऋषियों के आश्रम इसी के तट पर बसे और वैदिक सभ्यता के साथ संस्कृति की विकास यात्रा आगे बढ़ी। ऋग्वेद के नदी सूक्त में कई नदियों का वर्णन मिलता है, जिसमें सरस्वती को नदीतमा कहा गया है। नदीतमा का अर्थ होता है नदियों में सबसे उत्तम।

वैदिक सभ्यता में सरस्वती ही सबसे बड़ी और प्रमुख नदी थी। सूक्त में सरस्वती को अनंत, अखंड और प्रचंड वेग से गमन करने वाली नदी बताया गया है। इसे यमुना के पश्चिम और सतलुज के पूर्व में बहते और पर्वतों से सागर तक पहुँचते हुए बताया गया है। ऋग्वेद के सातवें मंडल में सरस्वती नदी का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है। ऋग्वेद में ही सरस्वती को ध्वनि उत्पन्ना कहकर पुकारा गया है। सूक्त में कहा गया है, सरस्वती नदी

के कल-कल प्रवाह में सात तरह के सुरों को प्रकट करने की क्षमता है।

इसी सूक्त में सरस्वती को सुरदेवी कहा गया है। जो आगे चलकर वाग्देवी, संगीत की देवी, सुरदायिनी जैसे विशेषणों में बदलती चली गई है—हे सरस्वती, आपकी दिव्य धारा के द्वारा मैं यज्ञ को संपन्न करता हूँ, जो प्रतिदिन ऊर्जा प्रदान करती है। हे होता, उस यज्ञ को संपन्न करें, जिसे सरस्वती प्रकट करती हैं और देवता सत्य वचन के रूप में प्रकट होते हैं। (ऋग्वेद 7.96.2)

आश्चर्य नहीं कि वसिष्ठ, अत्रि, दीर्घतमस, अंगिरस, मधुच्छंदा आदि ऋषि सरस्वती को नदी और देवी के रूप में संबोधित करते हैं। ऋग्वेद (7.95.2) के सूक्त में वर्णन आता है कि कल-कल ध्वनि ऐसी है कि सरस्वती नदी अपने सात सुरों के रथ पर सवार है और यह जीवन में प्राण और चेतना का प्रवाह बना रही है।

शुभ फल देने वाली और आयुष्मान बनाने वाली यह नदी माता कवियों को काव्य, ऋषि को ऋचा और पंडित को पांडित्य तथा ज्ञानी को ज्ञान के रूप में कृपा देती हैं। सरस्वती का आशीर्वाद केवल विद्वान और कवियों को ही नहीं, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को आयु, जीवन के मार्ग पर चलने की शक्ति और सत्य की दिशा प्रदान करता है।

प्रतीत होता है कि सरस्वती नदी के तट पर, इसके आँचल में जिसने जिस रूप में जीवन को साधने का उपक्रम किया, उसका वही सत्संकल्प फलित होता गया। इस तरह ऋषि वसिष्ठ ने नदी सूक्त में जिन नदियों का वर्णन किया है, उनमें सरस्वती प्रमुख हैं।

ऋषि वसिष्ठ सरस्वती को न केवल एक श्रेष्ठ नदी के रूप में वर्णित करते हैं, बल्कि इसको एक दैवी शक्ति और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के रूप में भी संबोधित करते हैं। वाल्मीकि रामायण में जब भरत कैकय देश से अयोध्या पहुँचते हैं, तब उनका सरस्वती और गंगा नदी को पार करने का वर्णन आता है।

आदिकवि वाल्मीकि लिखते हैं कि **सरस्वतीं च गंगा च युग्मेन प्रतिपद्य च, उत्तरान् वीरतस्य... भारुण्डं प्राविशद्वनम्,** अर्थात भरत ने सरस्वती के साथ गंगा और यमुना के युग्म वाले विशाल जल-भंडार को पार किया। महाभारत में भी वर्णन आता है कि कई राजाओं ने सरस्वती नदी के तट के समीप कई यज्ञ किए थे। कर्ण ने भी जीवन का अंतिम दान सरस्वती नदी के तट पर ही किया था। महाभारत के अनुसार, कुरुक्षेत्र तीर्थ सरस्वती नदी के दक्षिण और दृष्टावती नदी के उत्तर में स्थित है।

महाभारत में सरस्वती नदी के तट पर स्थित सभी तीर्थों का सविस्तार वर्णन शल्य पर्व के 35वें से 54वें अध्याय में मिलता है। इन स्थानों की यात्रा बलराम ने की थी और यात्रा करते-करते वे विनशन स्थान पर पहुँचे थे, जहाँ मरुभूमि में सरस्वती लुप्त हो रही थी। वैदिक काल के बाद पौराणिक युग आया, जिसमें पुराणों की रचना हुई। तब तक सरस्वती नदी के तट पर पनपी वैदिक सभ्यता का विस्तार अन्य मैदानी क्षेत्रों तक हो चुका था और समय के साथ सरस्वती लुप्त हो गईं। पुराणों में सरस्वती के लुप्त होने की गाथा इसके शापित होने की कथा के साथ जुड़ी हुई है।

कथा के अनुसार, महर्षि वेदव्यास के आग्रह पर श्री गणेश जी महाभारत लिखने के लिए तैयार हुए, जो कार्य बदरीनाथ धाम के समीप माणा गाँव के पास एक गुफा में संपन्न हुआ, लेकिन सरस्वती नदी की तीव्र गर्जना के कारण वेदव्यास जी द्वारा सुनाए जा रहे श्लोकों को गणेश जी सुन नहीं पा रहे थे। इस पर उन्होंने सरस्वती को अपने वेग को मंद

करने के लिए कहा, लेकिन देवी ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। तब क्रोध में आकर गणेश जी ने उन्हें भूमिगत होने का शाप दिया।

आश्चर्य नहीं कि सरस्वती नदी आज भी माणा के पास भूमिगत होती हुई दिखाई देती है और शांत भाव से आगे अलकनंदा में विसर्जित होती है। मान्यता है कि सरस्वती की एक धारा भूमिगत होकर तीर्थराज प्रयाग में मिलती है, जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती का त्रिवेणी संगम प्रख्यात है, जहाँ हर बारह वर्ष बाद महाकुंभ का आयोजन किया जाता है। महाभारत के अनुसार सरस्वती नदी को दुर्वासा ऋषि का भी शाप मिला हुआ है कि वे कलियुग के आने तक लुप्त हो जाएँगी और कल्कि अवतार के बाद ही इनका धरती पर आगमन होगा।

पुराणों में सरस्वती नदी के रूप से अधिक चर्चा त्रिदेवियों में पहली देवी के रूप में अधिक होती है—जिसमें कई स्थानों पर इन्हें ब्रह्मा जी की ब्राह्मी शक्ति सरस्वती के रूप में वर्णित किया जाता है, जिसका स्थान ब्रह्मलोक है। ये वीणावादिनी हैं, शुभ्र हंस इनका वाहन है, जो नीर-क्षीर विवेक का प्रतीक है। ये स्फटिक की माला धारण करती हैं, ज्ञान की देवी होने के कारण ये वेदों की वाणी भी हैं और सुर की देवी भी हैं। यह भी प्रचलित है कि ब्रह्मा जी इनकी सहायता से ही जगत् की रचना करते हैं।

आश्चर्य नहीं कि देवी सरस्वती के कारण ही इस सृष्टि में स्वर हैं, गूँज है, ध्वनि का प्रवाह है। श्रीमद्भागवत में यमुना तथा दृषद्वती के साथ सरस्वती नदी का उल्लेख किया गया है। श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान परशुराम ने यज्ञ के उपरांत अवभृथ स्नान किया था, जिसके बाद वे समस्त पापों से मुक्त हो गए थे। मेघदूत पूर्वमेघ में कालिदास ने सरस्वती का वर्णन ब्रह्मवर्त के अंतर्गत किया है। यहाँ तक कि पारसियों के पवित्र धर्मग्रंथ अवेस्ता में भी सरस्वती का नाम हरहवती के रूप में मिलता है।

संक्षिप्त विहंगावलोकन पर स्पष्ट होता है कि सरस्वती मात्र एक नदी नहीं, बल्कि एक देवी के रूप में, सभ्यता एवं संस्कृति की संवाहक एक सांस्कृतिक धरोहर रही हैं, जो आज भी भारतीय मानस में प्रवाहमान एक जीवंत धारा हैं। इसके स्थूलस्वरूप का रहस्योद्घाटन तथा इससे जुड़ती नई कड़ियाँ निश्चित रूप से हर सनातन संस्कृति प्रेमी के हृदय में श्रद्धा एवं रोमांच का भाव जाग्रत करती हैं। ❑

कड़कड़ाती सरदी में एक व्यक्ति ने दो साधुओं को एक-एक कंबल भेंट किए। साधु यात्रा पर जा रहे थे। रात में एक धर्मशाला में ठहरे। सोते समय एक साधु के मन में आया कि कहीं रात में कोई कंबल चुरा न ले, इसलिए उसने कंबल सिरहाने रख लिया और सो गया।

जब दूसरा साधु सोने लगा तो उसने देखा कि दो बच्चे सरदी से ठिठुर रहे हैं। उसने वह कंबल उन बच्चों को दे दिया और सो गया। रात में धर्मशाला में चोर घुस आए उन्हें और कुछ तो मिला नहीं तो वे साधु के सिरहाने लगा कंबल ही चुराकर ले गए।

सुबह जब वह साधु जगा तो कंबल खोया देखकर बहुत अधिक दुःखी हुआ। जबकि दूसरा साधु जिसने कंबल का दान कर दिया था, वह प्रसन्न था। सचमुच किसी भी वस्तु का राग सदैव दुःखदायी होता है और त्याग सदैव सुखदायी।

उत्साह का संचार लाए जीवन में विस्तार

मनुष्य जीवन इस सृष्टि का सर्वोत्तम सौभाग्य है, लेकिन अधिकांश मनुष्य इसे दु:खी, बोझिल एवं भारभूत मानकर जीते देखे जाते हैं। हताशा, निराशा एवं उदासीनता से भरा जीवन ईश्वर के इस बेशकीमती उपहार का निरादर है; जबकि आशा, उत्साह एवं प्रसन्नता से लबरेज जीवन मनुष्य होने की निशानी है व इसकी सार्थकता का प्रमाण है। इसके मूल में रहता है मनुष्य की दिग्भ्रमित सोच एवं संकीर्ण दृष्टिकोण, जिसमें थोड़ा संशोधन करते हुए, दैनिक चर्चा में छोटी-छोटी आदतों का समावेश करते हुए जीवन को नया अर्थ दिया जा सकता है, इसकी गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है। इसका शुभारंभ व्यक्ति प्रात: उठते ही कर सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव के निर्देशित आत्मबोध के सूत्र के अनुरूप उठते ही ईश्वर का सुमिरन एवं धन्यवाद करते हुए दिन भर की कार्यसूची बना सकता है। ऐसे में दैनिक कार्यों की प्राथमिकता तय रहेगी और किसी तरह की किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति से बचाव होगा और एक चुस्त-दुरुस्त दिनचर्या संभव होगी। साथ ही दिन का शुभारंभ सबके प्रति कृतज्ञता के भाव के साथ करना चाहिए।

अपने शुभचिंतकों एवं सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता का उभार तो सरल सहज रहता है, लेकिन प्रतिद्वंद्वियों, विरोधियों एवं विघ्नसंतोषियों के प्रति यह भाव सहज रूप में नहीं उभर पाता। थोड़ी गहराई में विचार करने पर स्पष्ट होता है कि इन्हीं के उपकार के कारण हम अधिक सजग, सशक्त एवं परिपक्व जीवन जीने के लिए प्रेरित एवं बाधित होते हैं। अत: ये भी हमारी कृतज्ञता एवं आभार के हकदार हैं।

नित्य कुछ शारीरिक सक्रियता तन-मन की जड़ता को तोड़ती है। साथ ही इसके साथ स्वास्थ्य लाभ भी मिलता है। अत: शारीरिक सक्रियता को लेकर न्यूनतम कार्यक्रम को अपनी स्थिति, आयु एवं रुचि के अनुरूप निर्धारित करें। इस तरह व्यस्त दिनचर्या के कारण शारीरिक क्रियाशीलता का जो पक्ष छूट जाता है, वह पोषण पाएगा और जीवन में इसके सकारात्मक परिणामों को हाथोंहाथ देखा जा सकेगा।

दिन भर जहाँ खड़े हैं, वहाँ से आगे बढ़ने का प्रयास करें। आगे बढ़ने से रोक रही नकारात्मक सोच, हीनता एवं भय के भावों और आदतों को चिह्नित करें। उन्हें चुनौती दें और छोटे-छोटे संकल्पित प्रयासों के साथ इनकी सीमा को तोड़ते हुए छोटी-छोटी जीत को हासिल करते जाएँ। ऐसी हर जीत के साथ जीवन में नए आत्मविश्वास एवं उत्साह का संचार होगा।

इसी के साथ अपनी बुद्धि के पोषण की भी उचित व्यवस्था करें। इसके अंतर्गत नित्य अपनी रुचि की पुस्तकों का पठन, श्रेष्ठ ग्रंथों का पारायण, ज्ञानवर्द्धक एवं प्रेरक विचारों का श्रवण-वाचन और आधुनिक संचार युग में अपने विषय के विशेषज्ञों का सत्संग लाभ लिया जा सकता है। इसके साथ निश्चित रूप में नित नूतन ज्ञान के साथ हमारे बौद्धिक आयाम का विकास-विस्तार होगा और जीवन की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होगी, लेकिन सोशल मीडिया के नकारात्मक

एवं विषाक्त पहलुओं से भी सावधान रहने की आवश्यकता है।

ऐसे संग-साथ से बचें, जिनसे नकारात्मकता एवं तनाव का भाव संक्रमित होता हो, फिर वह छल-छलावे से भरे सोशल मीडिया का हो या दूषित सामाजिक जीवन का। व्यस्त दिनचर्या के बीच में तन-मन को विश्राम दें। इस बीच शरीर को शिथिल कर सकते हैं, गहरी साँस ले सकते हैं। मन को कार्य से हटाकर बाहर जगत् से समेटकर अपने अंदर ला सकते हैं और अपने इष्ट-आराध्य या अंतरात्मा पर केंद्रित रह सकते हैं। समय हो तो शिथिलीकरण का अभ्यास कर सकते हैं, जिसके उपरांत फिर नई ताजगी एवं ऊर्जा के साथ अपने कर्त्तव्य कर्म में लग सकते हैं।

अपनी प्रतिभा को दिनचर्या में स्थान देना इस दिशा में एक प्रभावशाली कदम हो सकता है, जिसके माध्यम से व्यक्ति का रचनात्मक कौशल बाहर आता हो। यह संगीत, नृत्य से लेकर चित्रकला लेखन व पाककला या बागवानी आदि कुछ भी हो सकता है। ये जीवन के आशा-उत्साह के केंद्र से जोड़ने वाले स्वाभाविक उपक्रम साबित होते हैं। जरूरतमंदों के प्रति दया, करुणा एवं सेवा का भाव एक अपनाने योग्य सद्गुण है। किसी के जीवन को सँवरते, उबरते देखना एक गहनतम संतुष्टि का संचार करता है। ऐसे अवसरों को तलाशें तथा निष्काम सेवा के छोटे-छोटे कदम उठाएँ।

अपने घर-परिवार एवं मित्रमंडली के मध्य नित्य कुछ गुणवत्तापूर्ण समय भी जीवन में आशा-उत्साह का संचार करता है। यदि दूर हों तो फोन से भी बात हो सकती है। जीवन के तूफानी दौर के मध्य अपना संतुलन बनाने के लिए आवश्यक हो जाता है कि अधिकाधिक प्रकृति के सान्निध्य में रहें।

खेत-खलिहान, नदी, झील या पर्वत, जंगल जो भी पास हों, उनके संग विचरण करते हुए प्रकृति की गोद में अबोध शिशु की भाँति स्वयं को खोकर जीवन की खोई लय-ताल व ऊर्जा को पुन: प्राप्त कर सकते हैं। दिनचर्या के अंत में परमपूज्य गुरुदेव के निर्देश के अनुरूप तत्त्वबोध का अभ्यास, दिन भर का लेखा-जोखा करते हुए पूरा किया जा सकता है।

एक डायरी के रूप में दिन भर के सार सबक, यादगार मुलाकातों को जीवन की भावी रणनीति के रूप में कलमबद्ध कर सकते हैं। दिनचर्या के ये छोटे-छोटे अभ्यास जीवन में आशा-उत्साह एवं उमंग के संचारक तत्त्व हैं। इनके सम्मिलित प्रभाव निश्चित रूप से जीवन की गुणवत्ता एवं प्रसन्नता को बढ़ाने में सक्षम हैं। ❑

गाँव में किसान का गधा सूखे कुएँ में गिर गया। बहुत सोच-विचार के बाद किसान इस नतीजे पर पहुँचा कि इस बूढ़े गधे को बचाने के बजाय इसे कुएँ में ही दफना देना चाहिए। उसने कुछ लोगों को बुलाकर कुएँ में मिट्टी डालना आरंभ कर दिया। मिट्टी पड़ता देख पहले तो गधा रोया-रेंका, फिर अचानक शांत हो गया। गधा अब हिल-डुलकर मिट्टी को नीचे गिरा देता और उस पर चढ़ जाता। जैसे-जैसे मिट्टी गिराई जाती रही, वैसे-वैसे गधा उस मिट्टी को गिराकर उस पर चढ़ता जाता। जल्दी ही वह कुएँ के किनारे पर पहुँच गया और कूदकर भाग गया। सब देखते रह गए। हमें भी दूसरों द्वारा किए गए षड्यंत्रों, आलोचनाओं को अवरोध न बनने देकर उन्हें सीढ़ी बनाकर स्वयं को उससे बाहर निकालकर अपनी राह पर बढ़ जाना चाहिए।

स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है उपवास

उपवास को धर्मपरंपरा में खास महत्त्व दिया गया है। वह शरीर को हलका करने, अतिरिक्त वजन घटाने और शास्त्र की भाषा में कहें तो मेद को कम करने के लिए है। जरूरत से ज्यादा भोजन शरीर में आलस्य लाता है। साधकों के अनुसार इससे ध्यान या भजन-पूजन में चित्त एकाग्र नहीं होता है। साधना शुरू करने से पहले रजस् और तमस् को नियंत्रित कर सत्त्व को बढ़ा लेने के लिए उपवास का विधान है।

यह भी विधान है कि उपवास के साथ व्रत भी जुड़ा रहे। व्रत अर्थात संकल्प और उपचार। जैसे—एकादशी, पूर्णिमा, चतुर्थी या पर्व-त्योहारों के दिन लोग निराहार रहते हैं तो उसके साथ भजन, पूजन अथवा धार्मिक कर्मकांड भी जुड़े रहते हैं। इन उपचारों के बिना उपवास को सिर्फ भूखे रहना ही कहा जाता है।

गीता में श्रीकृष्ण ने आहार-विहार की जो मर्यादा बताई है—'यह योग न तो बहुत खाने वाले का है और न बिलकुल न खाने वाले का तथा न बहुत सोने वाले का और न ही हमेशा जागने वाले का सिद्ध होता है। दु:खों का नाश करने वाला यह योग तो यथोचित आहार-विहार और कर्म में चेष्टा करने वाले का ही सिद्ध होता है।'

उपवास और उपचार के बाद आए संतुलन को अगला चरण कह सकते हैं। सभी लोग शुरू से ही इतने संतुलित और संयमी नहीं रह सकते कि उन्हें उपवास की जरूरत ही न पड़े। यों कठिन तप करते हुए उच्च कोटि के साधकों द्वारा लंबे समय तक कुछ नहीं खाने या पानी और दूध पर ही रहने के उदाहरण भी उपलब्ध हैं।

स्वामी विवेकानंद ने अपने व्याख्यानों में पवहारी बाबा का जिक्र किया है, जो सिर्फ हवा पर ही रहते थे। साठ-सत्तर दिन तक कुछ भी खाए बिना रहने और तप करने के उदाहरण भी हैं। लेकिन ये उदाहरण अपवाद हैं, इन्हें नियम की तरह नहीं अपनाया जा सकता। शरीर विज्ञान के अनुसार तो निराहार रहने पर कुछ ही समय में शरीर के भीतरी अंग-अवयव शिथिल पड़ने लगते हैं तथा पाचन संस्थान लड़खड़ाने लगता है।

इसीलिए सामान्य आध्यात्मिक जीवन के लिए शरीर संतुलन साधने के अलावा आठ-दस दिन के उपवास शरीर को भले ही थोड़ा कमजोर करते हों, मन को मजबूत बनाते हैं। आषाढ़ से शुरू होकर दशहरे तक उपवासों और व्रत-त्योहारों का लंबा सिलसिला चलता है। यों पूरे वर्ष ही कोई-न-कोई व्रत-उपवास किए जाते हैं, लेकिन 108 दिन की इस अवधि में लगभग प्रत्येक दिन किसी-न-किसी तरह के उपवास के लिए निश्चित है।

इस अवधि की आठ एकादशी, पूर्णिमा, पूरा सावन माह, नवरात्र और चतुर्थी, पंचमी, अष्टमी आदि तिथियाँ विशेष संदर्भ लेकर आती हैं। निराहार इन सभी तिथियों में रहा जाता है, लेकिन प्रत्येक के साथ अलग-अलग विधि-विधान जुड़े होते हैं। उनके संदेश अभीष्ट व्रत के संदर्भ और अंतर्कथा में देखे जा सकते हैं। नवरात्र के नौ दिन तक चलने वाले उपवासों में भाव-श्रद्धा से जुड़ने वाले साधक अनुभव करते हैं कि अनुष्ठान पूरा होने तक उनके भीतर से एक नया ही व्यक्तित्व निकलकर आ रहा है, जो पहले से अधिक तेजस्वी, स्वच्छ तथा निर्मल है।

स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार तो उपवास किसी भी प्रयोजन के लिए किए जाएँ, उनका शरीर पर प्रभाव समान रूप से पड़ता है। उपचार, नैतिक बल, वातावरण और प्रायश्चित जैसे कई उद्देश्य हैं, जिनके लिए उपवास किए जाते हैं। एक बार भोजन ग्रहण करने पर कुछ घंटों तक जो शरीर को लिए गए आहार से शक्ति मिलती रहती है, किंतु उसके पश्चात शरीर में संचित आहार के अवयवों-प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और स्नेह या वसा का शरीर उपयोग करने लगता है।

वसा और कार्बोहाइड्रेट परिश्रम करने की शक्ति उत्पन्न करते हैं। प्रोटीन का काम शरीर के टूटे-फूटे भागों का पुनर्निर्माण करना है, किंतु जब उपवास लंबा या अधिक समय तक किया जाता है तो शरीर को प्रोटीन की कमी महसूस होने लगती है। उस कमी के कारण ऊतक बनने (टिशू फॉर्मेशन) और ऊर्जा उत्पन्न होने की गति धीमी पड़ जाती है। चालीस दिन से लेकर अस्सी-नब्बे दिन के भीतर शरीर पूरी तरह अशक्त हो जाता है, लेकिन आध्यात्मिक प्रयोजनों के लिए किए जाने वाले उपवास लंबे समय तक भी चलते हैं। जैसे पुरी के शंकराचार्य स्वामी निरंजन देव तीर्थ और प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने 1966-67 में गोरक्षा आंदोलन के दौरान अस्सी दिन तक उपवास किया था।

आंदोलन के एक और नेता महात्मा रामचंद्र शर्मा वीर ने एक-सौ से ज्यादा दिनों तक गोरक्षा के लिए उपवास रखा था, लेकिन कहा जा चुका है ये अपवाद हैं। किन्हीं खास परिस्थितियों में विशेष संकल्प और बल से संपन्न होने के बाद ही इस तरह के कीर्तिमान बन पाते हैं अन्यथा शरीर की औसत क्षमता छह सप्ताह से ज्यादा नहीं है।

कठोर व्रत निभाने या घोर तप करने वाले योगी-यति भी लंबे समय तक इस तरह के उपवास करते होंगे। सामान्य साधक उनके उदाहरण से अपनी मनःस्थिति बना सकते हैं, लेकिन अध्यात्म और योगशास्त्र एक अवस्था के बाद सामान्य क्रम जीने पर ही जोर देते हैं। जैसे श्रीकृष्ण यथोचित आहार-विहार अथवा बुद्ध सम्यक जीवन की ओर संकेत करते हैं।

उस जीवनचर्या के मापदंड अलग-अलग हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के साथ उनका निर्धारण बदल जाता है। व्रत-उपवास का उद्देश्य उस बिंदु को तलाशना है, जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए नितांत निजी और अलग है। व्रत-उपवास की प्रक्रिया से गुजरते हुए सावधानीपूर्वक निरीक्षण किया जाए तो वह बिंदु या मर्म दिखाई दे सकता है। उस बिंदु पर अपने जीवन और चेतना का संतुलन सहज ही साधा जा सकता है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

आजादी की वीरांगनाएँ

देश की आजादी की लड़ाई में महिलाओं ने अभूतपूर्व योगदान दिया था। इन महिलाओं में से कई के योगदान के बारे में चर्चा होती रहती है, लेकिन कई ऐसी अनजानी स्वतंत्रता सेनानियाँ भी रही हैं, जिनके बारे में कम ही लोग जानते हैं।

इतिहास से हमें जानकारी मिलती है कि स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाली ज्यादातर महिलाएँ अभिजात्य वर्ग या मध्य वर्ग की पृष्ठभूमि से आई थीं; जबकि इसके अलावा असंख्य ऐसी भी महिलाएँ थीं जो गरीब, रूढ़िवादी घरों से बिना किसी औपचारिक शिक्षा या बहुत कम स्कूली शिक्षा के साथ देश को आजाद कराने की जंग में शामिल हुई थीं। ऐसी ही कुछ जानी-अनजानी महिला स्वतंत्रता सेनानियों का परिचय इस प्रकार आता है।

लगभग एक शताब्दी पहले कानुपर के नजदीक बांदा में जन्मी राजकुमारी गुप्ता और उनके पति ने महात्मा गांधी और चंद्रशेखर आजाद के बहुत करीब रहते हुए स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी। राजकुमारी का काकोरी कांड में महत्त्वपूर्ण योगदान था; जबकि स्वतंत्रता संग्राम के बारे में बताने वाले लोग इनका उल्लेख बहुत कठिनाई से करते थे।

राजकुमारी को काकोरी ऑपरेशन में शामिल लोगों को रिवॉल्वर प्रदान करने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। उन्होंने अपने तीन साल के बेटे के साथ हथियारों को अपने अंत:वस्त्रों में छिपाकर खादी के कपड़े पहनकर इन हथियारों को उन्हें सौंपा। जब वे गिरफ्तार हुईं तब ससुरालवालों ने उनका परित्याग कर दिया और ससुराल से निकाल दिया, परंतु तब भी उनकी भारत को आजाद कराने की ललक शांत न हुई।

एक और साहसी स्वतंत्रता सेनानी थीं—तारा रानी श्रीवास्तव। उनका जन्म पटना के निकट सारण में हुआ था। उन्होंने अपने पति फुलेंदु बाबु के साथ 'भारत छोड़ो आंदोलन' में हिस्सा लिया। गांधी जी के आह्वान पर फुलेंदु ने सिवान पुलिस स्टेशन की छत पर झंडा फहराने के लिए पुरुष और महिलाओं की भारी भीड़ जुटाई थी। यह नवविवाहित दंपति भीड़ की अगुवाई कर नारे लगा रही थी। फुलेंदु जल्द ही पुलिस की गोलियों का शिकार हो गए, पर तारा रानी इससे डरी नहीं।

वीरता का प्रदर्शन करती हुई तारा ने अपने घाव पर कपड़ा बाँधा और तिरंगे को लेकर साथियों के साथ कदमताल करते हुए सीधे पुलिस स्टेशन पहुँच गईं। जब वे वहाँ से लौट रही थीं, तब तक उनके पति की मौत हो चुकी थी।

ऐसे ही एक अन्य घटनाक्रम में अँगरेज गवर्नर और विश्वविद्यालय के चांसलर स्टेनली जैक्सन जो कि भारत में लंबे समय के अँगरेजी शासन के प्रतीक माने जाते थे—इन पर जानलेवा हमला करने वाली बीना दास भी भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं।

यह घटना सन् 1932 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह के दौरान घटी थी। हालाँकि वे अपनी योजना में सफल नहीं हो पाई थीं, लेकिन उनके इस प्रयास ने उस दौर के युवाओं को काफी प्रेरित किया। बीना भौमिक के पति बीनी माधव दास उड़ीसा के कटक के रावेनशॉ

कॉलेजियट स्कूल के जाने-माने शिक्षाविद् थे। नेताजी सुभाष चंद्र बोस भी इस स्कूल के छात्र रह चुके थे।

बीना ने कलकत्ता के बेथुन कॉलेज में पढ़ाई की, लेकिन बाद में डियोसियन कॉलेज में दाखिला ले लिया, जिससे उनकी क्रांतिकारी गतिविधियाँ छिपी रहें। इंग्लिश ऑनर्स में बीए पास करने के बाद अपने ही दीक्षांत समारोह में उन्होंने इस क्रांतिकारी कार्य को अंजाम दिया, जिसकी वजह से उन्हें नौ साल के सश्रम कारावास की सजा मिली। जेल से छूटने के बाद वे 'जुगांतर' क्रांतिकारी क्लब से जुड़ गईं।

सन् 1942 में उन्हें फिर से तीन साल के लिए जेल भेज दिया गया, तब वे कोलकाता (कलकत्ता) कांग्रेस कमेटी की सेक्रेटरी थीं। सच्ची देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत बीना दास आजादी मिलने के बाद भी देशसेवा के कार्यों में जुटी रहीं। ऐसा ही एक अन्य उदाहरण नेल्ली सेनगुप्ता का है। अँगरेज महिला होते हुए भी नेल्ली सेनगुप्ता अपने जीवन को यहाँ के लोगों पर निछावर करने के लिए भारत आईं। विदेशी होते हुए भी उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वे भारत की समर्पित क्रांतिकारी हैं।

12 जनवरी, 1886 को जन्मी नेल्ली के पिता का नाम फ्रेडरिक विलियम ग्रे और माँ का नाम एडिथ हेनरिट्टा ग्रे था। इंग्लैंड में पढ़ाई के दौरान ही उनकी मुलाकात भारत के देशभक्त जतिंद्र मोहन सेनगुप्ता से हुई। उन दोनों ने प्रेम विवाह कर लिया। उनके विवाह के बाद उन्होंने अपने पति के देश को स्वीकार कर लिया और वे अपने पति के साथ ही भारत को अँगरेजी हुकूमत से आजाद कराने की योजना में लग गईं।

नेल्ली ने अपनी जन्मभूमि छोड़ दी और अपनी जन्मभूमि के अँगरेजी शासन के खिलाफ अपने पति के साथ खड़ी हो गईं। नेल्ली एक समर्पित पत्नी थीं, जो सुख और दु:ख में हमेशा अपने वीर पति के साथ खड़ी होती थीं। उन्होंने भारतीय संयुक्त परिवार वाली अपनी ससुराल में भी अच्छा सामंजस्य कायम कर लिया।

नेल्ली में ऐसी खूबी थी कि स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी उनकी हर गतिविधि से लोग प्रेरित होते थे। उन्हें महात्मा गांधी और सरोजिनी नायडू ने काफी प्रेरित किया। असहयोग आंदोलन के दौरान चटगाँव में खादी बेचते वक्त उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था। उन्होंने अपने पति की उस समय भी सहायता की, जब वे बंगाल-असम मेन रेल के साथ-साथ स्टीमर सर्विस वर्कर्स और चाय बागान के श्रमिकों, जो चाँदपुर में फँसे थे और बुरी तरह से ब्रितानियों की क्रूरता का शिकार थे—उनके लिए हड़ताल कर रहे थे। जब जतिंद्र का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा तब नेल्ली ने उनके राजनीतिक कार्यों को जारी रखा।

'अवज्ञा आंदोलन' के दौरान नेल्ली पति को लेकर दिल्ली और अमृतसर की राजनीतिक यात्रा पर आईं। राजनीतिक भाषण देने के जुर्म में जतिंद्र को गिरफ्तार कर लिया गया, लेकिन नेल्ली ने दिल्ली की एक प्रतिबंधित बैठक में जान-बूझकर भाषण दिया और 4 महीने के लिए जेल भेज दी गईं। सन् 1933 में वे कांग्रेस की प्रेसिडेंट चुनी गईं। इसे भारत की आजादी की लड़ाई में उनके अमूल्य योगदान के रूप में देखा गया। बाद में उन्हें कलकत्ता कॉरपोरेशन का महापौर चुना गया।

भारत के विभाजन के बाद वे अपनी ससुराल में ही रहीं। उन्होंने सामाजिक कार्यों के लिए खुद को समर्पित कर दिया। वे चटगाँव जो अब बांग्लादेश में है, की विधानसभा के लिए निर्विरोध चुनी गईं। अपने जीवन के अंतिम समय में उन्होंने भारत में चिकित्सा सुविधाओं को बेहतर बनाने की व्यवस्था

की। देश में बेहतर स्वास्थ्य सुविधा का आरंभ करने के बाद उन्होंने 1973 में अंतिम साँस ली। 5 मई, 1911 को चटगाँव के धोलाघाट गाँव में जन्मी एक अन्य वीरांगना का नाम प्रीतिलता था। उनके पिता का नाम जगनबंधु वादेदर था, जो चटगाँव नगरपालिका के हेड क्लर्क थे।

उनकी माँ प्रतिभा वादेदर स्थानीय क्रांतिकारियों की साथी और स्वदेशी आंदोलन की समर्थक थीं। पढ़ाई में अव्वल प्रीतिलता के मन में भी देशभक्ति हिलोरे मार रही थी। कोलकाता (कलकत्ता) विश्वविद्यालय के ब्रितानी अधिकारियों ने उनकी डिग्री पर रोक लगा दी थी। यह डिग्री उन्हें मरणोपरांत 80 वर्ष बाद मिली। रेवोल्यूशनरी पार्टी की सदस्य के रूप में प्रीतिलता ने अपनी कुछ सहपाठियों के साथ रेवोल्यूशनरी पार्टी के स्टूडेंट फ्रंट का गठन किया।

उनका समूह चटगाँव के क्रांतिकारियों के लिए धन एकत्रित करने का कार्य करता था। साथ ही विद्यालय के छात्रों के बीच पाठकों का ऐसा मंच तैयार करता था, जिनमें देशभक्ति की भावना कूट-कूटकर भरी होती थी। पार्टी के हाईकमान के निर्देश पर प्रीतिलता कोलकाता (कलकत्ता) की अंडरग्राउंड फैक्टरियों से विस्फोट वाले हथियार लेकर चटगाँव तक पहुँचाती थीं।

कलकत्ता के बेथुने कॉलेज में उनकी साथियों में कल्पना दत्ता, सरोजनी पाल, कुमुदिनी रक्खित, रेणुका राय और कमला मुखर्जी शामिल थीं, जो प्रीतिलता को उनके मिशन में सहायता करती थीं। 13 जून, 1932 को प्रीतिलता धोलाघाट में सावित्री देवी के घर पर बंगाली क्रांतिकारी मास्टरदा सूर्यसेन से मिलीं। इस मुलाकात में प्रीतिलता ने माँग की कि लड़कियों को भी क्रांतिकारी गतिविधियों में समान अधिकार मिले।

उन्होंने आग्रह किया कि कई लोगों ने अब तक मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने जीवन निछावर किए हैं। अब लड़कियों की बारी है कि उन्हें भी अपनी जन्मभूमि की रक्षा करने का गौरव मिले। चटगाँव के यूरोपीय क्लब पर हमला करने की जिम्मेदारी शैलेश्वर चक्रवर्ती को सौंपी गई थी जिसमें वे कुछ कारणों से पहले असफल रहे थे। सितंबर-1932 में सूर्यसेन दक्षिणी कतरली गाँव में यूरोपीय क्लब पर हमले की रणनीति की तैयारी पर चर्चा करने के लिए पहुँचे।

पार्टी हाईकमान के निर्देश पर प्रीतिलता और कल्पना दत्ता ने ब्रितानी जासूसों को चकमा देने के लिए पुरुषों के वस्त्र पहनकर सूर्यसेन की गुप्त बैठक में हिस्सा लिया। दुर्भाग्य से कल्पना को पहारताली में गिरफ्तार कर लिया गया, लेकिन प्रीतिलता जासूसों से बचने में सफल रहीं। बैठक में सूर्यसेन ने प्रीतिलता को 23 सितंबर, 1932 में यूरोपीय क्लब पर हमला करने की जिम्मेदारी दी।

इस प्रक्रिया में प्रीतिलता ने सेना की यूनिफार्म पहनी और यूरोपीय क्लब के नजदीक की झाड़ियों में छिपकर बैठ गईं। उन्होंने ब्रिटिश शस्त्रागार से लूटी गई राइफलों, पिस्तौलों और कारतूसों को अपने कोट और बम को झोले में डाल रखा था। उस समय ब्रितानी शासन के अधिकारी क्लब में मौज-मस्ती कर रहे थे। उस दौरान प्रीतिलता की टीम उन पर हमले की तैयारी कर रही थी। क्लब के रसोइए का संकेत मिलते ही प्रीतिलता ने क्लब के गेट के गार्ड पर गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं।

हमले की अगुवाई करते हुए प्रीतिलता ने क्लब के गेट पर बम फेंका और जल्द ही गेट पर पहुँच गईं। अचानक हुए हमले के लिए ब्रितानी तैयार नहीं थे और वे वहाँ से भागने लगे, लेकिन जल्द ही पास की छावनी से सेना के जवान हमले

के लिए आ धमके। सेना का सामना करते हुए प्रीतिलता ने अपने साथियों को वापसी के संकेत दिए। कुछ मिनट बाद प्रीतिलता ने वापस आकर देखा कि उनके सभी साथी सुरक्षित हैं या नहीं।

वे पहारताली बाजार जाना चाहते थे; क्योंकि वह कतरली गाँव से बहुत नजदीक था। जैसे ही ये बाजार की ओर चले, पास में छिपे एक युवा अँगरेज ने प्रीतिलता पर गोली चला दी। गोली प्रीतिलता के सीने में लगी और वह सड़क पर गिर पड़ीं। प्रीतिलता जन्मजात क्रांतिकारी थीं और वे अँगरेजों के सामने हार मानने वाली नहीं थीं। मातृभूमि की रक्षा के लिए उन्होंने सायनाइड की गोली खाई और अमर हो गईं। वे अँगरेजों के जाल में कभी नहीं फँसना चाहती थीं। इसलिए वे स्वयं को बलिदानियों की पंक्ति में खड़ा कर स्वदेश के लिए समर्पित हो गईं।

ऐसी अनगिनत क्रांतिकारी नारियाँ हैं, जिनकी क्रांति की कथा-गाथा बहुत विस्तृत रूप में तो नहीं मिलती, लेकिन उनके साहस और पराक्रम के सामने नतमस्तक हुए बिना रहा भी नहीं जा सकता है। आज भी वे भारतीय महिलाओं के लिए प्रेरणादायी भूमिका में हैं। ❑

कोलिन विल्सन मशहूर अँगरेज लेखक थे। उन्होंने अपराध, रहस्य एवं पराविद्या पर लगभग 100 से अधिक बेस्ट सेलर किताबें लिखीं थीं। अपनी आत्मकथा के प्रथम अध्याय में उन्होंने बताया कि अपनी जवानी की शुरुआत में उन्होंने जीवन का सबसे बड़ा चुनाव किया। उनके पिता लेस्टर में जूता उद्योग में मामूली कारीगर थे। विल्सन आइन्सटीन से प्रेरित थे और स्वयं को उनके उत्तराधिकारी के रूप में देखते थे, लेकिन घरेलू कठिनाइयों के कारण उन्हें स्कूल छोड़कर 16 वर्ष की आयु में ही काम करना पड़ा।

एक ऊन फैक्टरी में कुछ समय काम करने के बाद वे किसी प्रयोगशाला में सहायक बन गए। उन्होंने इस जीवन की कल्पना नहीं की थी अतैव उन पर निराशा गहराती गई। ऐसे में एक दिन उन्होंने आत्महत्या का निर्णय कर लिया।

वे हाइड्रोसायनिक एसिड पीने जा रहे थे कि तभी उनके मन में कुछ कौंध-सा गया। उन्हें लगा कि उनके भीतर दो कोलिन विल्सन विद्यमान हैं। उस दिन एक कोलिन विल्सन ने दोनों को मार दिया होता। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उसी क्षण मेरा साक्षात्कार अपने भीतर के दूसरे कोलिन विल्सन से हो गया, इसलिए मैं बच गया।

तात्पर्य यह है कि जीवन में उतार-चढ़ाव आते ही रहते हैं। यदि एक दिशा में सफलता नहीं प्राप्त हो तो हमें अन्य दिशा में भी प्रयास करना चाहिए।

अध्यात्म का पहला सोपान- कर्मयोग

हर व्यक्ति जीवन में शांति, सुकून और आनंद की तलाश में है, जिसकी हलकी-सी झलक उसे सबसे पहले इंद्रिय सुखों के रूप में मिलती है, लेकिन इनकी तृप्ति का हर प्रयास उसे और गहरे भोग की ओर ले जाता है।

इसके साथ अतृप्ति का भाव और सघन होता जाता है और सुख की लत शीघ्र ही व्यसन का रूप ले लेती है और तृप्ति की यह मृगतृष्णा कभी पूरी पूर्ण नहीं होती, व्यक्ति इस भाग-दौड़ में अंततः खाली हाथ ही रहता है और जीवन में ठगा-सा अनुभव करता है। कुछ लोग इंद्रिय सुखों से ऊपर मानसिक एवं बौद्धिक आयाम में सुख की खोज करते हैं। कुछ बाहरी रिश्तों-नातों में इसे तलाशते हैं।

अनासक्त भाव से कर्त्तव्य के आधार पर यहाँ कुछ खोज पूर्ण होती है, लेकिन एकतरफा आशा-अपेक्षा से युक्त खोज अंततः असंतुष्टि, तनाव एवं अवसाद के साम्राज्य में ही जाकर समाप्त होती है। जीवन में सब कुछ प्राप्य होने, अनुकूल होने पर भी जीवन की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता का भाव जीवन की सीमितता का तल्ख बोध दे जाता है और जीवात्मा इससे उबरने के लिए किसी अनश्वर तत्त्व एवं स्थायी सुख-शांति की तलाश में आगे बढ़ती है।

इस दशा में जीवन के मर्म की खोज में व्यक्ति सहज रूप में धर्म-अध्यात्म की ओर प्रवृत्त होता है। प्रचलित मान्यताओं एवं शास्त्र प्रमाणों के आधार पर जीवन में सच्चे सुख-शांति एवं आनंद के स्रोत एवं स्वरूप का वर्णन उसे यहाँ मिलता है और इनको प्राप्त करने की विधा एवं पद्धति उसे अपने धर्म एवं आध्यात्मिक परंपरा में स्पष्ट होती है और कुछ सौभाग्यशाली ही किसी समर्थ गुरु की शरण में पहुँच शास्त्रों का सार भी सहज रूप में पा जाते हैं।

संसार में धर्म-अध्यात्म के प्रचलित स्वरूप पर पहली नजर में भक्ति-भाव में डूबे, संकीर्तन, नाम जप करते भक्तों पर दृष्टि जाती है और फिर ध्यान में मग्न योगियों व साधकों पर महावाक्यों का चिंतन, मनन व निदिध्यासन करते ज्ञानसाधक जगत् मिथ्या, ब्रह्म सत्य के अपने ही जगत् में विचरण करते दृष्टिगोचर होते हैं।

इनके अतिरिक्त तांत्रिकों, मांत्रिकों, अघोरियों व औघड़मार्गियों का अपना पथ है, लेकिन सर्वसाधारण के लिए मूलतः भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं ध्यानयोग की बातें बताई जाती हैं और इनके संग जीवन की पहेली को सुलझाते देखा जा सकता है।

इन सबका अपना बाहरी स्वरूप है, कर्मकांडीय पक्ष है, जिन्हें धर्म-अध्यात्म के पथ पर अग्रसर साधकों को अपनाते देखा जा सकता है, लेकिन अधिकांश इनके बाहरी स्वरूप में ही अटककर रह जाते हैं।

मात्र अमुक तरह के रंग में रँगे वस्त्र धारण करने, भाँति-भाँति के तिलक लगाने, कंठी माला व अन्य प्रतीकों को धारण किए एवं इनसे सजे चित्र-विचित्र धर्मात्मा अवश्य ही ध्यान आकर्षित करते हैं, कौतुक का भी विषय बनते हैं और प्रभावित होने पर उनके पथ का अनुगमन भी करते हैं।

नया साधक अमुक मार्ग के दृश्यमान इन बाहरी स्वरूपों में उलझकर रह जाता है और उसे इनकी तह तक उतरने में समय लगता है और सब कुछ त्यागकर साधना मार्ग में प्रवृत्त वीतरागी की अवस्था अभी उसके लिए दूर की कौड़ी रहती है, जबकि धर्म-अध्यात्म की सीढ़ियों को क्रमिक रूप से पार किया जाना होता है।

इस तरह सांसारिक जीवनयापन कर रहा व्यवसायी, शिक्षक, किसान, सिपाही व अपने-अपने मोर्चों पर परिवार का पालन-पोषण कर रहा सर्वसामान्य सद्गृहस्थ धर्म-अध्यात्म के किस पथ का अनुसरण करे, विचारणीय हो जाता है; क्योंकि यह सत्य है कि जब तक मन में रजोगुण एवं तमोगुण प्रबल हैं, तो ध्यान महज समय बिताने का उपक्रम बनता है।

ऐसे में ध्यान के पलों को या तो साधक निद्रा-तंद्रा में बिताते दिखता है या फिर अपने दिन भर के कार्यों व जिम्मेदारियों की चिंता करते देखा जा सकता है, लेकिन ध्यान में मन नहीं लगता। यही स्थिति भक्त की रहती है तब उसके भक्ति-भजन भी तामसिक व राजसिक गुणों के चलते अपने अहं व स्वार्थपूर्ति के साधन ही बनते हैं।

जिस निष्काम भक्ति के साथ अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश होता है, वह साधनात्मक पुरुषार्थ इस दशा में नहीं बन पड़ता। फिर तामसिक अवस्था में धर्म के नाम पर स्वयं के क्षुद्र हितों के लिए दूसरों का शोषण, अत्याचार करते देखा जा सकता है। अपने थोड़े से दु:ख, कष्ट व पीड़ा निवारण हेतु लोगों को किसी निरीह पशु की बलि देते तक देखा जा सकता है।

यह घोर तामसिकता का धर्म है। आश्चर्य नहीं कि धर्म-अध्यात्म के साथ जुड़ी व्यापार बुद्धि के चलते ही व्यक्ति को लाखों-करोड़ों लोगों को पैदल तीर्थयात्रा कर तप करते हुए देखकर भी स्वयं अति विशिष्ट लोगों की पंक्ति में सरकते हुए पुण्य बटोरने की निरर्थक चेष्टा करते देखा जा सकता है।

इस अवस्था में धर्म-अध्यात्म के मर्म से रहित अंधी दौड़ में व्यक्ति किस पुण्य का अर्जन कर रहा है, कहना कठिन है। अधिकांशत: ऐसे में व्यक्ति पुण्य से अधिक पाप का भागीदार बन रहा होता है। इस तरह तम व रजोगुण की अवस्था में कर्मकांड ही सब कुछ रहता है। जिसमें हाथ कुछ लगता नहीं।

अपने कर्त्तव्य की कीमत पर अपनाया गया मार्ग धर्म नहीं हो सकता, अपनी जिम्मेदारियों को निभाए बिना अपनाया गया पथ अध्यात्म नहीं हो सकता। इसके मर्म का बोध साधक को होना आवश्यक है, जो शास्त्रों के स्वाध्याय एवं आध्यात्मिक महापुरुषों के सत्संग से स्पष्ट होता है।

इस तरह सर्वसाधारण के लिए कर्मयोग का मार्ग ही वरेण्य है, जिसमें अपने कर्त्तव्य,कर्मों को पूरा करते हुए, अपनी जिम्मेदारियों को निभाते हुए वह आंतरिक परिष्कार के मार्ग पर आगे बढ़ता है। क्रमिक रूप में जैसे-जैसे चित्त का शोधन होता है, तमोगुण रजोगुण में रूपांतरित होता है और रजोगुण सतोगुण में और इस क्रम में निर्मल भक्ति एवं ज्ञान का प्रवाह स्वाभाविक रूप में समय के साथ अंत:करण की गहराइयों में उद्धृत भी होता है।

ऐसे में ध्यान के लिए मशक्कत नहीं करनी पड़ती, ध्यान सहज रूप से घटित होने लगता है। धर्म-अध्यात्म का पथ कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं ध्यानयोग के सोपानों को पार करता हुआ, सहज आनंद की अवस्था की ओर बढ़ता है, जहाँ शांति, सुकून एवं सच्चे सुख की खोज सत्य में पूर्ण होती है। ❑

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

घर-आँगन की शोभा-गौरैया

हम लोग अपनी स्मृतियों में जीते हैं और हममें से ज्यादातर छोटे गाँवों और कस्बों से आकर शहरों में बसे हैं और बस रहे हैं। शहरों के हमारे घरों में न आँगन होता है, न पिछवाड़ा। न पेड़, न पानी।

हमारे घर ऐसे बनाए जा रहे हैं; जिनके भीतर से न आसमान दिखता है, न चाँद और तारे। न सूरज और न धूप। इन घरों के बरामदे और बालकनियाँ घेर ली गई हैं तो चिड़िया कहाँ अपना घोंसला बनाए और कहाँ अपने बच्चों को खिलाए।

हमारे यहाँ प्रकृति गमलों में कैद रहती है या सार्वजनिक पार्कों में सजी-धजी। सर्वत्र एक कृत्रिम वातावरण। यहाँ कोई गौरैया चहके तो कैसे चहके ? हमें याद आता है—बचपन में शायद सबसे पहली कहानी हमने चिड़िया की सुनी थी जो दाल का दाना चुग कर लाती है और चावल का दाना चुग कर लाए कौवे के साथ मिलकर खिचड़ी बनाती है। कौआ चिड़िया को नहाने भेज देता है और अपने हिस्से की खिचड़ी खाने के बाद चिड़िया के हिस्से की खिचड़ी भी चट कर जाता है।

इस कहानी ने सहज ही चिड़िया के प्रति एक आत्मीयता जगा दी। सुबह से शाम तक घर में उसकी चहचहाहट मोहक लगती थी। घर में ही उसका घोंसला था। चिड़िया और शायद उसका चिड़ा जब अपने नन्हे बच्चे के लिए चोंच में भरकर कुछ लाते थे और वात्सल्य और ममता से उसे खिलाते थे तो उन्हें देखना एक आंतरिक आनंद से भर देता था।

वे उसे उड़ना सिखाते थे। उससे अपनी भाषा में शायद बात करते थे और थोड़े-थोड़े अंतराल पर हमारे घर में चिड़िया के साथ-साथ एक मोहक चहचहाहट उतरा करती थी। वह सब कितना सुंदर था। चिड़िया हमारे करीब रखे दाने चुगती थी, लेकिन हमारे जरा से हिलने से भी घबरा उठती थी और फुदककर कपड़े सुखाने के तार पर जा बैठती थी। घर में कोई एक-दो नहीं, बल्कि बीसियों चिड़िया उतर आती थीं। फुदकती थीं। चुगती थीं और उड़ जाती थीं।

दुनिया में मनुष्यों के अलावा तमाम पशु-पक्षियों का दिन भोजन की तलाश में ही बीतता है। नन्ही गौरैया के साथ भी ऐसा ही होता होगा, लेकिन पता नहीं क्यों उनके भोजन इकट्ठा करने, सहज आवेग के साथ घोंसला बनाने के लिए तिनका लाने के लिए उड़ने और फिर तेजी से लौटकर उसे दूसरे तिनकों के साथ जोड़कर रख देने में हमें एक आत्मीय खेल नजर आता रहा है, पर जब हम नन्ही गौरैया की मेहनत का हिसाब लगाते हैं तो उसके नन्हे सामर्थ्य को देखकर द्रवित हो जाते हैं।

उसका फुदकना, नृत्य करना, गरदन घुमा कर और उठाकर देखना, फुरती और चौकन्नापन. हमारे बचपन के घरों में चहक और खुशी भरता रहा है। दुर्भाग्यवश आज गौरैया हमारे घरों से गायब होती जा रही हैं।

बड़े शहरों में तो उनकी संख्या तेजी से घट रही है। यही हालात रहे तो हो सकता है कि चिड़िया कविताओं और चित्रों में ही सीमित होकर रह जाए और आने वाली पीढ़ियाँ चिड़ियों के चित्रों

को देखकर उस तरह विस्मित हों, जैसे हम डायनासोरों के चित्रों को देखकर आश्चर्य से भर उठते हैं। क्या पता? लेकिन यह एक सच्चाई है, जिसे महानगरों में रहने वाले लोग जानते हैं कि दुनिया भर में गौरैया कम हो रही हैं।

विदेशों में लोग जानते हैं कि कितने वर्षों में कितनी चिड़िया कम हुई हैं, लेकिन हमारे देश में इसका कोई अध्ययन नहीं हुआ है। संतोष की बात है कि सरकार का ध्यान अब इस ओर गया है और उसने 20 मार्च को गौरैया दिवस मनाने का फैसला किया है।

नेचर फॉरएवर सोसायटी ने कई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के सहयोग से इस दिवस को शहर में गौरैया की संख्या में तेजी से आ रही कमी पर केंद्रित कर दिया है और लोगों से कहा है कि वे सोचें कि यह घरेलू नन्ही चिड़िया आखिर क्यों गायब होती जा रही है और हम सब मिलकर क्या करें कि हमारे शहरों में गौरैया और उसकी मासूम चहचहाहट बनी रहे। ऐसे ही गिद्ध भी तेजी से गायब हो रहे हैं और आज उनकी इतनी कम संख्या बची है कि मरे हुए जानवरों के सड़े हुए मांस को सफाचट कर हमारे पर्यावरण को साफ और संतुलित रखने की समस्या बनी हुई है।

बढ़ते औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और फसलों में कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग—गिद्धों की मौत और उनके गायब होने का कारण रहे हैं। शुक्र है कि पिछले सालों में गिद्धों की एक ऐसी प्रजाति जिसे विलुप्त मान लिया गया था, फिर से देखने में आई और पर्यावरणप्रेमी इस बात से खुश हुए कि प्रकृति ने मरे हुए ढोर-डंगरों आदि को खाने का जो काम एक तरह के सफाईकर्मी पक्षी गिद्ध को सौंपा है, वह अभी बचा हुआ है।

हमें यह जानकर ताज्जुब होगा कि आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र में कुछ जनजातियाँ गिद्ध का मांस खाती हैं। इससे गिद्धों पर मँडरा रहे खतरे की गंभीरता को समझा जा सकता है। मनुष्य ने शायद ही किसी जानवर को छोड़ा हो। कोरिया और चीन में साँप भी खाया जाता है; जबकि हमारे ही नगालैंड में सड़क पर रहने वाले कुत्तों को भी खा लिया जाता है।

अफ्रीका में ऊँट, बंदर ही नहीं, मगरमच्छ को भी कुछ जनजातियाँ खा जाती हैं, लेकिन गौरैया के प्रति प्रायः सभी समाजों में एक तरह से आत्मीयता का भाव रहा है। वह निरीह है, जैसे गिलहरी। उसकी लंबाई मुश्किल से 15 सेंटीमीटर होती है और वजन 25 ग्राम। उसकी फुरती देखते ही बनती है और छोटे-से आकार में भरी हुई ऊर्जा और उसकी चहचहाहट उसे बेहद आत्मीय बना देते हैं। फिर उसका फुदकना और चहचहाना उसे और सुंदर बनाता है।

गौरैया प्रायः दाना खाती है, लेकिन उसके बच्चों को प्रोटीन के लिए नन्हे कीड़े चाहिए होते हैं, जिन्हें माँ गौरैया ढूँढ़कर लाती है और उनके मुँह में अपनी चोंच से डालती है। यों हमारे शहरों में कबूतर, कौए और मैना भी कम हो रहे हैं, मगर गौरैया सबसे विकट स्थिति में है। कौए और जंगली स्लेटी रंग के कबूतर चिड़ियों को सबसे ज्यादा चुनौती दे रहे हैं। शहर के मकानों में गाँव और कस्बों की तरह घोंसलों के लिए जगह नहीं होती और जो होती है, उस पर जंगली कबूतर कब्जा कर लेते हैं।

शहर में जगह-जगह कबूतरों को दाना, पानी और कामचलाऊ भोजन मिल जाता है, लेकिन शहरों में आवास बढ़ने और हरियाली की कमी के कारण चिड़ियों को कीड़े-मकोड़े अपने बच्चों की

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

आवश्यक खुराक के लिए नहीं मिल पाते। पेड़ों पर चिड़ियों के बजाय दूसरे ताकतवर पक्षियों का कब्जा रहता है। हम लोग बड़े-बड़े विषयों पर सोचते हैं और टीवी स्टूडियो में उन पर दैनिक बहसें होती हैं। हम मौसम का हाल बताते हैं और लोगों की कहानियाँ सुनते हैं और सुनाते हैं।

घरों की जगह मकानों और वस्तुओं की बातें करते हैं, लेकिन गौरैया, मोर, तोतों, कपोतों आदि के बारे में कभी नहीं सोचते। गौरैया के बारे में सोचना एक स्तर पर अपने समूचे पर्यावरण के बारे में सोचना है। प्रकृति के एक-एक पत्ते, एक-एक फूल और एक-एक जीव का महत्त्व है। इन सबसे मिलकर हम बने हैं और ये सब मिलकर हमें बना रहे हैं। गौरैया हमारे जीवन का हिस्सा है और हमारी खुशी का भी। उसे गायब नहीं होने देना है।

वर्षों पहले एक कवि ने एक कविता लिखी थी—'मैं फिर कहता हूँ चिड़िया।' यह कविता एक स्तर पर इस संसार में छोटे-से-छोटे जीव के अस्तित्व का सम्मान करने की कविता थी। उसी कविता की पंक्ति के शब्द लेकर हम कहना चाहते हैं कि अब समय आ गया है हम सब लोग मिलकर कहें—'हम फिर कहते हैं गौरैया।' ❑

सन् 1970 की यह घटना है। परमपूज्य गुरुदेव उन दिनों बहुधा बाहर ही बने रहते थे। उस दिन मथुरा वे यात्रा कार्यक्रम से लौटे ही थे। बेतिया के एक गायत्री परिजन श्री रामकृष्ण सिंह परिवारसहित शिविर हेतु मथुरा गायत्री तपोभूमि आए थे। परमपूज्य गुरुदेव के दर्शन हेतु वे घीयामंडी पहुँचे। चरणस्पर्श के पश्चात कुशल-क्षेम पूछी गई।

रामकृष्ण जी ने सबके वृत्तांत बताते हुए कहा कि श्री उमाकांत जी झा ने आपको प्रणाम कहा है। श्री उमाकांत झा एक 42वर्षीय कर्मठ कार्यकर्त्ता थे व पूज्यवर से वर्षों से जुड़े थे। सुनते ही पूज्य गुरुदेव ध्यानस्थ हो गए। मानो उस अवधि में वे कहीं और चले गए हों। कुछ क्षण बाद पूज्यवर बोले—"उमाकांत एक बार आ जाते तो भेंट हो जाती। अब उनका समय पूरा हो रहा है।" इतना कहकर बातों का प्रवाह उन्होंने दूसरी ओर मोड़ दिया। रामकृष्ण यह सब समझ नहीं पाए कि ऐसा क्यों पूज्यवर ने कहा। शिविर समापन के बाद रामकृष्ण सिंह वापस बेतिया चले गए।

कुछ दिन बाद उनका एक पोस्टकार्ड परमपूज्य गुरुदेव के नाम आया, जिसमें लिखा था—हम उस समय समझ नहीं पाए थे, पर यहाँ आने पर पता चला कि जब आप हमें यह बता रहे थे कि उमाकांत आ जाते तो अच्छा रहता, अब उनका समय पूरा हो रहा है, उसी दिन अचानक वे अस्वस्थ हुए व रात्रि को चिर-निद्रा में सो गए। आपके कहे का गूढ़ अर्थ हमारी समझ में अब आया है। परोक्ष जगत् में घट रहे एक-एक घटनाक्रम की जानकारी जिस दैवी सत्ता को थी, उनसे संबंधित इस प्रसंग का साक्षीस्वरूप यह पोस्टकार्ड अभी भी है।

जीवन प्रबंधन के स्वर्णिम सूत्र

मानव जीवन असीम संभावनाओं का आगार है, जिसे परमपिता परमेश्वर ने अपनी प्रतिकृति के रूप में गढ़कर धरती पर भेजा है, लेकिन अधिकांश व्यक्ति इसका आभास नहीं कर पाते और सचेतन अवस्था में इस ओर नहीं बढ़ पाते। इसी पृष्ठभूमि में यहाँ जीवन प्रबंधन के कतिपय स्वर्णिम सूत्रों की चर्चा की जा रही है, जो जीवन की परिपूर्णता की ओर बढ़ने में सहायक हैं।

जिसमें सबसे पहले जीवनलक्ष्य का निर्धारण है। निश्चित रूप में एक युवा के लिए पहला लक्ष्य अपने पैरों पर खड़ा होना है। पढ़ाई के साथ कौशल विकास में सामान्य-सा ध्यान देने पर यह संभव होता है, जिससे परिवार का भरण-पोषण संभव हो सके और सामाजिक कर्त्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह भी संभव हो सके, लेकिन पेट-प्रजनन व परिवार तक सीमित शिक्षा से जीवन का एक उद्‌देश्य पूरा नहीं होता, जिसे मानव जीवन की गरिमा के अनुकूल कहा जा सके, जिसमें उसकी सकल अंतर्निहित संभावनाएँ अभिव्यक्त हो सकें।

इसके लिए जीवन की गहरी समझ एवं सम्यक दृष्टि की आवश्यकता होती है और यह स्वाध्याय-सत्संग के साथ विकसित होती है। इन्हीं आधारों पर व्यक्ति में आत्मबोध का भाव जाग्रत होता है, जीवन का स्वधर्म स्पष्ट होता है और वह समझ पैदा होती है कि वह इस जीवन का श्रेष्ठतम उपयोग कर सके। इसके लिए नित्य आत्मसमीक्षा एवं स्व-मूल्यांकन के बहुमूल्य पलों से गुजरना पड़ता है, जिससे कि जीवन लक्ष्य उत्तरोत्तर रूप में अधिक स्पष्ट होता जाए और व्यक्ति की रुचि ही उसका व्यवसाय बनता जाए।

निश्चित रूप में जीवनशैली का प्रबंधन इसका अगला चरण है। वर्तमान में जीवन की अधिकांश समस्याओं व रोगों का कारण जीवनशैली से जुड़ी विकृतियाँ हैं, जिनके उपचार के लिए व्यक्ति को आय का एक बड़ा हिस्सा खरच करना पड़ता है। अपने खान-पान व दिनचर्या को संतुलित कर व्यक्ति आसानी से इनके चंगुल से बाहर निकल सकता है।

समय एवं तनाव प्रबंधन जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। अपने कर्त्तव्यों के सम्यक पालन के साथ व्यक्ति एक बड़े तनाव से बच जाता है। यदि एक विद्यार्थी नियमित रूप से पढ़ाई तथा एक शिक्षक नित्य स्वाध्याय के कर्त्तव्य धर्म का पालन नहीं करता तो उनका परीक्षा की घड़ी व कक्षा में तनावग्रस्त होना तय है। नियमित रूप से किया गया अध्ययन व अभ्यास विद्यार्थी को हर परीक्षा के लिए तैयार रखता है और वह सहज रूप में हर तरह की कसौटी को पार कर जाता है।

यदि लक्ष्य स्पष्ट है, जीवन की प्राथमिकताएँ तय हैं, तो समय प्रबंधन स्वाभाविक रूप से सरल हो जाता है। वर्तमान युग में युवाओं के लिए मोबाइल एक बड़ी समस्या बना हुआ है, लेकिन यदि विद्यार्थी का अपनी पढ़ाई का लक्ष्य तय है, तो वह अपने निश्चित एवं नियत समय में मोबाइल का उपयोग करता है तथा उससे मन को हलका करने व अपनी पढ़ाई में इसके सहयोग का कार्य संपन्न कर लेता है। बिना लक्ष्य के युवाओं को मोबाइल में घंटों लिप्त देखा जा सकता है, जो अंततः तमाम तरह

की विसंगतियों व रोगों का कारण बनता है, जिससे आज हर दिशाहीन व्यक्ति व युवा जूझ रहा है।

ईमानदारी के साथ अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह व्यक्ति को निश्चिंत बनाए रखता है। उसका मन दूसरों से अपेक्षाकृत अधिक शांत, स्थिर व एकाग्र रहता है और उसकी पढ़ाई-लिखाई व कार्यों में उत्पादकता बढ़ी-चढ़ी रहती है। ऐसे व्यक्ति की ही रचनात्मक क्षमताएँ सही ढंग से अभिव्यक्त हो पाती हैं। जबकि आलस्य-प्रमाद से भरा अस्त-व्यस्त एवं बिखरा हुआ मन प्रतिभा का धनी होते हुए भी जीवन में अपेक्षित उत्कृष्टता के सोपानों को नहीं छू पाता। फिर समग्र सफलता का संबंध बाहरी एवं आंतरिक उत्कृष्टता तथा उपलब्धियों से मिलकर बनता है।

पारिवारिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन में उचित समायोजन करते हुए तथा अपने वाणी-व्यवहार के संयम तथा शालीनता के आधार पर व्यक्ति बाहरी सफलता को सुनिश्चित करता है। इसी के आधार पर बेहतरीन रिश्तों की नींव पड़ती है और बिना अधिक आशा-अपेक्षा के सेवा कार्य संभव होता है। जीवन प्रबंधन के संदर्भ में यहाँ आध्यात्मिकता का समावेश एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यह आपसी संबंधों एवं कर्त्तव्य कर्मों के प्रति और गंभीर एवं अनासक्त भाव देता है, जिससे व्यक्तित्व का विकास गहनतम स्तर से होता है।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित व्यावहारिक अध्यात्म, वैज्ञानिक अध्यात्म आत्मदेवता की साधना के माध्यम से व्यक्ति आध्यात्मिक उत्कृष्टता के उच्च सोपानों की ओर अग्रसर होता है। इसके साथ चरित्र निर्माण की जड़ें गहनतम रूप से सिंचित होती हैं तथा व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित होता है।

अंदर ईमान, ऊपर भगवान तथा उसके साथ कर्त्तव्य धर्म का निर्वहन महान व्यक्ति को सर्वांगीण उत्कृष्टता के पथ पर अग्रसर रखता है तथा जीवन पूर्णता के नित नए सोपानों को पार कर रहा होता है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में पूज्य गुरुदेव के दर्शन पर आधारित जीवन जीने की कला के जीवन प्रबंधन पाठ्यक्रम में उपरोक्त सभी विशेषताएँ समाहित हैं, जिनका सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

अपने पेशेवर पाठ्यक्रमों के साथ विद्यार्थी यहाँ जीवन प्रबंधन को अनिवार्य रूप में पढ़ता है। इसके साथ मूल्याधारित शिक्षा की आवश्यकता पूर्ण होती है, जिसे परमपूज्य गुरुदेव ने शिक्षा के साथ विद्या का संगम बताया था। देव संस्कृति विश्वविद्यालय में पढ़ाई के इच्छुक हर छात्र-छात्रा का भावभरा आह्वान एवं स्वागत किया जाता है कि वह यहाँ आवेदन कर, प्रवेश परीक्षा को पास करे, जिसके बाद वह जीवन की गरिमा को निखारने वाले इस अभिनव पाठ्यक्रम का हिस्सा बन सकता है। ❑

आचार्य शंकर से एक व्यक्ति ने प्रश्न किया—"प्रभु! मैं जीवन में बहुत से कार्य करना चाहता हूँ, पर समय नहीं मिल पाता।"

आचार्य बोले—"वत्स! अपने जीवन में मुझे अभी तक एक व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जिसे भगवान ने दिए गए दिन में एक क्षण कम दिया हो। यदि दिन 24 घटिकाओं में सबके लिए पूरा होता है तो तुम्हारे लिए वह भिन्न भाव क्यों रखता।"

उस व्यक्ति को आचार्य का कहा समझ में आ गया।

केदारनाथ आपदा पीड़ितों पर यौगिक अभ्यास का प्रभाव

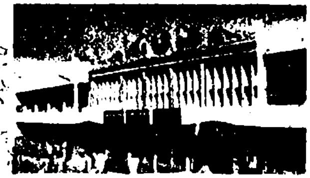

मानवीय हस्तक्षेप अथवा पर्यावरणीय कारणों से उत्पन्न प्राकृतिक आपदाओं का सामना मानव को करना पड़ता है। धरती के किसी-न-किसी भू-भाग में आएदिन प्राकृतिक आपदाओं की घटना होती रहती है और व्यापक स्तर पर मानव जीवन इससे प्रभावित भी होता है। सूखा, फ्लैश फ्लड, भूकंप, चक्रवात, सुनामी, अतिवृष्टि, तूफान, बाढ़, ज्वालामुखी, भूस्खलन, बरफीले तूफान जैसे कितने ही रूपों में प्रकृति की रुष्टता पर्यावरण, प्राणिजगत् व मानवीय जीवन को प्रभावित करते हैं।

भारत जैसे विशाल भू-भाग और तीनों ओर समुद्र से घिरे देश में, यहाँ की जलवायु विविधता व अन्य पर्यावरणीय तथा मानवीय कारण मिलकर प्राकृतिक आपदाओं को उत्पन्न करते हैं, जिससे पर्यावरण के साथ-साथ मनुष्य जीवन को आर्थिक व मनोवैज्ञानिक नुकसान का सामना भी करना पड़ता है।

आपदाओं के दौरान व पश्चात जीवन व साधन संसाधन का संरक्षण व पुनर्स्थापना एक बड़ी चुनौती होता है। सरकारी व स्वतंत्र संस्थाएँ इससे निपटने का प्रयास तो करती हैं, परंतु प्रभावित लोगों के जीवन में जो मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है, उसके समुचित समाधान का कोई उपयुक्त उपाय दिखाई नहीं पड़ता। फलस्वरूप प्रभावित व्यक्ति लंबे समय तक अथवा कई बार तो मरने तक इसकी पीड़ा, तनाव व डर को भीतर-ही-भीतर जीते रहता है।

ऐसे लोगों के लिए, जो आपदाओं की चपेट से गुजरे हैं, उन्हें सदमे से बाहर निकालकर सामान्य मनोदशा में आने के लिए सहयोग की आवश्यकता होती है।

मनोविज्ञान की भाषा में आपदाओं से पीड़ित व्यक्तियों की मनोदशा पर पड़ने वाले प्रभाव व समस्याओं के समूह को पोस्ट ट्रॉमेटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर (PTSD) कहा गया है। यह एक गंभीर मनोवैज्ञानिक स्थिति है। एक प्रकार का चिंता विकार है, जो किसी व्यक्ति में एक या एक से अधिक दरदनाक घटनाओं, उत्पीड़न, गंभीर चोट, मृत्यु की स्थिति का सामना, जघन्य हादसे आदि से गुजरने के बाद विकसित होता है।

यह सभी पीड़ितों में अलग-अलग तरह से विकसित होता है। कुछ तो धीरे-धीरे इससे उबर जाते हैं, परंतु बहुत से लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें मदद की आवश्यकता होती है। घटना के उपरांत इस समस्या की चपेट में आने की अवधि भी सभी की भिन्न-भिन्न होती है। किसी में कुछ घंटे-दिन तो किसी में सप्ताह, महीने, वर्ष का समय लग जाता है।

जब इस मनोविकार के लक्षण प्रकट होने लगते हैं तब इससे ग्रस्त व्यक्ति स्वयं को असुरक्षित, असहाय,निराश महसूस करता है और घटना से जुड़े दृश्य की स्मृति बार-बार उभर आती है। ऐसे में व्यक्ति कई बार उनसे बचने की कोशिश करता है या शिथिल-सुन्न हो जाता है।

अनिद्रा, तनाव, डर और चिंता का उच्च स्तर (हाइपरएराउसल) जैसे लक्षण उसकी मानसिक अवस्था को असामान्य किए रहते हैं। आपदा प्रभावितों में इस तरह की मानसिक व मनोसामाजिक समस्याओं के निदान एवं प्रबंधन की दिशा में विश्वस्तर पर जो प्रयास एवं परामर्श की प्रक्रिया है, वह अपर्याप्त है। एक समुचित,

समग्र और व्यापक समाधान उपाय की खोज निरंतर जारी है।

इस खोज के क्रम में ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार में एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। योग विज्ञान एवं मानव चेतना विभाग के अंतर्गत वर्ष-2021 में शोधार्थी ज्योति द्वारा संपन्न यह शोध अध्ययन पोस्ट ट्रॉमेटिक डिसऑर्डर के प्रबंधन में यौगिक व आध्यात्मिक तकनीकों को प्रयुक्त करने की संभावना को सार्थकता देने वाला एक अतिविशिष्ट शोध-अध्ययन है। शोधार्थी ने यह अध्ययन विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० सुरेशलाल वर्णवाल के निर्देशन में पूरा किया है।

इस शोध का विषय है—**'दि इफेक्ट ऑफ योगा पैकेज ऑन पोस्ट ट्रामेटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर (PTSD) इन दि सर्ववायवर ऑफ 2013 उत्तराखंड फ्लड डिजास्टर।'** इस शोध विषय में शोधार्थी द्वारा उत्तराखंड राज्य में 14 से 17 जून, 2013 के मध्य घटित प्राकृतिक आपदा से प्रभावित लोगों का चयन किया है। वर्ष, 2004 में आई सुनामी आपदा के पश्चात यह देश की सबसे बड़ी प्राकृतिक आपदा थी।

उच्च हिमालय क्षेत्रों में भारी बारिश, बाढ़, भूस्खलन, बादल फटने, कटाव आदि से उत्तराखंड के अनेक जिले आपदाग्रस्त हो गए थे। स्थिति की भयावहता के बढ़ने का एक कारण राज्य के चार धामों की तीर्थयात्रा का पर्यटन सत्र भी था क्योंकि; आपदा के समय लाखों की संख्या में लोग स्थान-स्थान पर मौजूद थे।

उत्तराखंड राज्य में अचानक आई इस बाढ़ और भूस्खलन की आपदा ने व्यापक विनाश की स्थिति उत्पन्न कर दी और प्रकृति-पर्यावरणीय संरचना, कृषि-क्षेत्र, वन्य जीव से लेकर मनुष्यों तक को भारी नुकसान पहुँचाया। बड़े स्तर पर आर्थिक और मनोवैज्ञानिक भार से क्षेत्र का समूचा जनजीवन अस्त-व्यस्त और असामान्य हो उठा था।

लोगों ने अपनों को बाढ़ में बहते, मरते, घायल होते देखा था, हजारों की संख्या में लोग लापता हो गए, ऊँचे स्थानों पर फँसे रहे, चोटिल हुए लोगों की संख्या भी लाखों में थी। स्थानीय और यात्री-सभी ने समान रूप से इस आपदा के दंश को झेला था।

घटना की व्यापकता और भारी नुकसान के आँकड़ों से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसी प्राकृतिक आपदा से ग्रस्त व्यक्तियों की मनो-सामाजिक अवस्था किस प्रकार प्रभावित हुई होगी। अत: शोधार्थी का इसे अपने अध्ययन के विषय के रूप में चयनित करना अत्यंत प्रासंगिक और प्रभावी प्रयास कहा जा सकता है।

शोधार्थी ने उत्तराखंड आपदा से ग्रसित प्रमुख जिलों में PTSD के प्रति अधिक संवेदनशीलता की संभावना को केंद्र रखकर राज्य के उत्तरकाशी जिले को अपने प्रयोग हेतु चयनित किया। पीडीएस प्रश्नावली के माध्यम से तथ्यों को एकत्रित कर पोस्ट ट्रामेटिक डिसऑर्डर के लक्षण वाले कुल 80 लोगों को चयनित कर इस अध्ययन में सम्मिलित किया गया तथा इनमें से 40 को नियंत्रित समूह व 40 को प्रयोगात्मक समूह में वर्गीकृत कर शोध प्रयोग का कार्य प्रारंभ किया गया।

चयन में यह भी ध्यान रखा गया कि चयनितों की न्यूनतम शिक्षा 8वीं तक व आयु 18 से 65 वर्ष के बीच हो। शोध प्रयोग की प्रक्रियाओं को लागू करने से पूर्व शोध-उपकरण की सहायता से सभी का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। परीक्षण हेतु जिस उपकरण को प्रयुक्त किया, वह है—एडना बी. फोओ (1994) द्वारा निर्मित पोस्ट ट्रामेटिक स्ट्रेस डायग्नोस्टिक स्केल।

परीक्षण के उपरांत एक माह की अवधि तक शोधार्थी द्वारा नियमित प्रयोगात्मक समूह के लोगों

को यौगिक प्रक्रियाओं का अभ्यास करवाया गया। इसके अंतर्गत जिन यौगिक प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया गया, वे हैं—

(i) प्रज्ञायोग व्यायाम

(ii) सर्वांगासन,

(iii) शवासन

(iv) नाड़ी शोधन प्राणायाम,

(v) ज्योति अवतरण ध्यान-साधना।

प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की भाँति पुनः सभी चयनित लोगों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों का शोधार्थी द्वारा सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया तथा परिणाम के रूप में यह देखा गया कि शोध में प्रयुक्त यौगिक प्रक्रियाओं एवं तकनीकों का पोस्ट ट्रॉमेटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर पर सार्थक और सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

शोध परिणामों का निष्कर्ष यह दरसाता है कि योगासन, प्राणायाम, विश्रांति, मंत्रजप और ध्यान का सम्मिलित अभ्यास व्यक्ति के तंत्रिका तंत्र को प्रभावित व पुनः प्रशिक्षित कर PTSD के समाधान में सार्थक सहयोग प्रदान करता है। इसके साथ ही यह योगाभ्यास सभी शारीरिक प्रणालियों को सुदृढ़ बनाने तथा मनोभावनात्मक क्षमताओं के प्रबंधन एवं संतुलन में कुशलता प्रदान करता है।

अपने शोध परिणामों के आधार पर शोधार्थी का मत है कि आपदा से प्रभावित हो PTSD जैसी गंभीर समस्या के शिकार बने लोगों के लिए यह योगाभ्यास अत्यंत सरल, व्यावहारिक, सस्ता-सहज और कारगर रूप से प्रभावशाली है। ऐसे लोगों को, जो मानसिक समस्याओं की गिरफ्त में हैं, उनमें यह योगाभ्यास जीवन को देखने का नया दृष्टिकोण देकर सकारात्मकता उत्पन्न करता है तथा उनके सामान्य दैनिक जीवन के सुचारु संचालन में भी अत्यंत सहायक सिद्ध होता है।

इस अध्ययन के परिणामों में जो सार्थकता एवं सकारात्मकता के तथ्य प्राप्त हो सके हैं, उनका मुख्य कारण इन यौगिक तकनीकों का अभ्यास ही है।

अध्ययन में योगाभ्यास के अंतर्गत जिन योग अभ्यासों का चयन किया गया है, वे स्वतंत्र रूप से अपने आप में विशिष्ट एवं योग-साधना व चिकित्सा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जैसे आसन मस्तिष्क के गाबा (GABA) स्तर को बढ़ाने में मदद करते हैं, प्राणायाम नाड़ियों की गतिविधियों को सुचारु और सबल बनाने में सहयोगी सिद्ध होता है।

इसी प्रकार मंत्रजप, ध्यान और विश्रांति का अभ्यास संपूर्ण मनोभावनात्मक क्षमताओं को नियंत्रित, प्रबंधित व कुशलतापूर्ण बनाने में प्रभावी होता है। यह प्रक्रिया बाह्य और आंतरिक संघर्षों में सामंजस्य उत्पन्न कर शांति, सहजता, ऊर्जा और सकारात्मकता को उत्पन्न कर समूचे जीवन एवं व्यक्तित्व को सर्वथा एक नवीन स्वरूप प्रदान कर देती है।

इस शोध में योगाभ्यास की तकनीकों को जिस समस्या के प्रबंधन के लिए प्रयुक्त किया गया तथा सार्थक परिणाम देखे गए हैं, उस समस्या के उपचार में तो यह कारगर उपाय है ही, साथ ही अन्य कारणों से उत्पन्न मानसिक समस्याओं के समाधान में भी इन तकनीकों की प्रभावी भूमिका निश्चित हो सकती है।

इस दिशा में यह अध्ययन पर्याप्त तथ्य, प्रेरणाएँ एवं मार्गदर्शन प्रदान करने वाला महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी शोधकार्य सिद्ध होगा। ❑

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।

अर्थात हितकारी और मधुर वचन दुर्लभ होता है। *—किरातार्जुनीयम्, 1/4*

ज्ञानी कर्मफल से बँधता नहीं, नियुक्त रहता है

(श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की सत्रहवीं किस्त)

[श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अठारहवें अध्याय के सोलहवें श्लोक पर चर्चा इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि ऐसे पाँच हेतुओं के होने पर भी जो उस विषय में केवल शुद्ध आत्मा को कर्त्ता देखता है, वह दुर्मति ठीक नहीं देखता है; क्योंकि उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं है अर्थात उसने विवेक को महत्त्व नहीं दिया है। इस सूत्र में श्रीभगवान अर्जुन को स्पष्ट करते हैं कि चौदहवें श्लोक में जिन पाँच कारकों का, साधनों का उल्लेख उन्होंने किया था—उन सभी कारकों में कर्त्ता ही मुख्य कारक है। श्रीभगवान ने गीता में पहले भी कहा है कि जीवात्मा अहंकार के कारण ही स्वयं को कर्त्ता या भोक्ता मान बैठता है; जबकि आत्मा का सत्य स्वरूप तो साक्षी का है।

ऐसा व्यक्ति जो स्वयं को कर्त्ता मान बैठता है, वह इस शाश्वत सत्य को भूल जाता है कि इस संसार की समस्त क्रियाएँ वस्तुतः प्रकृति के द्वारा ही होती हैं। सत्य ये ही है कि इस संसार के प्रकृति के गुण ही परस्पर क्रिया कर रहे हैं और आत्मा न कर्त्ता है न भोक्ता है, वरन वह तो द्रष्टा है। जो द्रष्टा है, आत्मा के सत्य स्वरूप से परिचित होता है, वह प्रकृति के गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्त्ता नहीं मानता है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति जो स्वयं को कर्त्ता मानकर बैठ गया है, उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं है और वह विवेकशून्यता में आत्मा के सत्य स्वरूप को भुला बैठा है। सार रूप में श्रीभगवान इस श्लोक में कहते हैं कि जितने भी कर्म होते हैं, उनके होने के कारण पाँच हेतु हैं, पर उनमें भी अहंकार से मोहित अंतःकरण वाला स्वयं को कर्त्ता मान बैठता है।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि—

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न, हन्ति न निबध्यते॥ 17॥

शब्दविग्रह—यस्य, न, अहङ्कृतः, भावः, बुद्धिः, यस्य, न, लिप्यते, हत्वा, अपि, सः, इमान्, लोकान्, न, हन्ति, न, निबध्यते।

शब्दार्थ—जिस पुरुष के (अंतःकरण में)(**यस्य**), मैं कर्त्ता हूँ (ऐसा) (**अहङ्कृतः**), भाव (**भावः**), नहीं है (तथा) (**न**), जिसकी (**यस्य**), बुद्धि (सांसारिक पदार्थों में और कर्मों में) (**बुद्धिः**), लिपायमान नहीं होती (**न, लिप्यते**), वह पुरुष (**सः**), इन (**इमान्**), सब लोकों को (**लोकान्**), मारकर (**हत्वा**), भी (वास्तव में) (**अपि**), न, (तो)(**न**), मारता है (और) (**हन्ति**), न (**न**), पाप से बँधता है (**निबध्यते**)।

अर्थात जिसका अहंकृत भाव (मैं कर्त्ता हूँ—ऐसा भाव) नहीं है और जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती, वह युद्ध में इन प्राणियों को मारकर भी न

मरता है और न कर्मफल से बँधता है। अर्जुन के मन में जिस प्रश्न ने गीता के प्रथम अध्याय में जन्म लिया था, भगवान श्रीकृष्ण उसी का उत्तर इस अध्याय में प्रदान करते दिखते हैं। वे अर्जुन को समझाते हैं कि कर्मफल का आधार, कर्म से बँधने का आधार कर्त्ताभाव का होना है और जो कर्त्ताभाव से, अहंताभाव से रहित है—उसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती अर्थात वह फिर कर्मफल से नहीं बँधता।

गीता के प्रारंभ होते समय अर्जुन के मन में यह प्रश्न आया था कि इन लोगों को, जो महाभारत की रणभूमि में उसके सम्मुख खड़े हैं, जिनमें गुरुजन भी हैं, उनको मारने से क्या उसे पाप नहीं लगेगा? इसलिए भगवान यहाँ उत्तर देते हैं कि यदि अहंता और बुद्धि की लिप्तता न हो तो मात्र महाभारत की युद्धभूमि में खड़े लोगों को ही नहीं, वरन संपूर्ण प्राणियों को मारने से भी पाप नहीं लगेगा। श्रीभगवान इस श्लोक में कहते हैं कि '**यस्य अहंकृतः भावः न**'—जिसे कर्तृत्व का, अहंकार का भाव नहीं रहता।

इससे पूर्व के श्लोक में भगवान कह ही चुके हैं कि अज्ञानी व्यक्तियों को, जिनकी बुद्धि शुद्ध नहीं है ऐसे दुर्मतियों को ही अहंभाव होता है, परंतु विवेकवानों को यह भान रहता है कि करने वाला मैं नहीं हूँ। जैसे मकान में रहते समय व्यक्ति स्वयं को मकान नहीं समझने लगता, वैसे ही देहरूपी क्षणिक आवास में रहते हुए कर्त्तापन का भाव रखना भी मूढ़ता ही है।

यहाँ भगवान उस ज्ञानी पुरुष की ओर इशारा करते हैं, जिसे अहंकार का भाव नहीं रहता। इसको और भी अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि '**यस्य बुद्धिः न लिप्यते**'—अर्थात जिसकी बुद्धि निर्लिप्त या अनासक्त बनी रहती है। ऐसा व्यक्ति लोगों का हनन करते हुए भी (**सः इमान् लोकान् हत्वा अपि**) हनन नहीं करता (**न हन्ति**) अर्थात राग-द्वेषजन्य विकारों से नहीं बँधता।

ज्ञानी पुरुष के चित्त में सृष्टि के प्रति मिथ्यात्व पैदा होने के कारण, यथार्थ दृष्टि प्राप्त होने के कारण राग-द्वेष आदि विकार जन्म नहीं लेते। जिसमें ये तीनों गुण होते हैं, यथा अहंताभाव का अभाव, निर्लिप्त बुद्धि या चित्त, राग-द्वेष के विकारों से मुक्त व्यक्तित्व—वह न तो किसी के मारने का कारण बनता है और न ही वह किसी बंधन में बँधता है (**न निबध्यते**); क्योंकि कर्मफल से बँधने का जो कारण है, उस कारण का उसके चित्त में अभाव हो चुका है। (क्रमशः)

कर्म करने से मनुष्य बँधता है, ऐसा एक व्यक्ति ने सुन रखा था। उसने अपनी जिज्ञासा एक संत के सम्मुख रखी व उनसे पूछा—"महाराज! यदि मैं कर्म न करूँ, मात्र चिंतन करूँ तो क्या मैं कर्मबंधनों से नहीं बँधूँगा।"

संत उसे समझाते हुए बोले—"पुत्र! ये तुमने कैसे सोच लिया कि विचार करना, कर्म करना नहीं है। विचार सूक्ष्मस्तर का कर्म है। समय की तरह मनुष्य को विचार-प्रवाह को भी सत्प्रयोजनों में निरत रखना चाहिए। मन का निग्रह करने पर ही निष्काम कर्म संभव है; क्योंकि कार्य तो परिणति है, उसका मूल रूप विचार ही है। विचार सधेंगे तो कर्म स्वतः ही सध जाएँगे। उस व्यक्ति को जीवन जीने के लिए उपयोगी दिशा मिल गई।

सौभाग्यशाली वसंत

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह विशिष्टता है कि वे न केवल कष्ट से पीड़ित व्यक्ति के लिए भावनात्मक मरहम का काम करते हैं, वरन वे जीवन-पथ से विमुख सभी व्यक्तियों के लिए एक दिशानिर्देशक का कार्य भी करते हैं। अपने एक ऐसे ही विशिष्ट उद्बोधन में वंदनीया माताजी हर गायत्री परिजन को स्मरण दिलाती हैं कि हमारे लिए वसंत पंचमी का अवसर अत्यंत सौभाग्यशाली है; क्योंकि वह न केवल माँ सरस्वती के अवतरण का दिवस है; वरन पूज्य गुरुदेव का आध्यात्मिक जन्मदिवस भी है। ऐसे में हमें यह स्मरण रखने की आवश्यकता है कि गुरुवर का हमारे ऊपर कितना अनुदान व कितना ऋण है तथा उस ऋण से उऋण होने का प्रयत्न हममें से हर परिजन को करना चाहिए। वे कहती हैं कि हमें पूज्य गुरुदेव से अतुलनीय अनुदान मिला है और हमें स्वयं से यह अपेक्षा करनी चाहिए कि हम गुरुदेव के लिए कुछ कर सकें, तभी हम उनके सच्चे शिष्य बन पाएँगे। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

गुरु की पुकार

अभी बच्चे कह रहे थे—अभी गाना गा रहे थे— ''देश की पुकार है'', बेटे और मैं कहूँगी कि गुरु की पुकार है और मार्गदर्शक की पुकार है और वो कहता है कि मेरे बच्चो आओ, अब मैं थकता जाता हूँ। अरे थकेगा तू, तेरे घरवाले, वो नहीं थक रहे। उनके अंदर अभी इतनी जीवनीशक्ति है, जितनी एक अठारह साल के नौजवान में होगी।

बेटे, उनकी कलाइयों में, उनके दिमाग में इतनी क्षमता है कि किसी विद्यार्थी के भी नहीं हो सकती जितना उनमें है, लेकिन अब समय है कि आप आइए और साथ दीजिए। बेटे आप नहीं देंगे तो आप पछताएँगे कि हम किस संत के साथ जुड़े थे और अभागे-के-अभागे रह गए।

भगवान ने सब कुछ दिया—आँचल ही न समाय तो क्या करिए। देने वाले ने बहुत दिया, पर आँचल ही न समाय तो क्या करिए। बेटे देने वाले ने कोई कसर नहीं छोड़ी। बेटे उन्होंने अपने शरीर के साथ भी अन्याय किया। अपनी अक्ल के साथ में भी किया। एक घड़ी चैन से कभी विश्राम नहीं किया। सारा-का-सारा जीवन लगा दिया। उन्होंने किसके लिए लगाया है ? अपने लिए ? नहीं बेटे, आप सबके लिए, सारे विश्व के लिए, लेकिन आप तो संकीर्ण हैं न। आपका आँचल भर दिया गया, लेकिन आप हर समय उसको यों ही झटकारते रहे, फैलाते रहे, तो बताइए फिर वो अनुदान कहाँ रुकेगा ? कहाँ जाएगा ? बेटे वो तो ठोकर खाकर के लौट जाएगा।

शंकर और पार्वती जा रहे थे। सोमवती अमावस्या थी। गंगास्नान करने को लोगों की भीड़ जा रही थी। उन्होंने कहा कि शंकर जी! ये सारी इतनी जो भीड़ है, ये कहाँ जा रही है। उन्होंने कहा कि यह सब गंगा जी नहाने जा रही है, तो फिर इनका होगा क्या ? तुम्हें नहीं मालूम है क्या होगा ?

भगवान शिव ने ली परीक्षा

उन्होंने कहा कि ये स्वर्ग में जाएँगे। तो एकोएक जो भी गंगास्नान करने जा रहा है, ये सब स्वर्ग में जाएँगे ? अरे शंकर जी! आप तो मजाक कर रहे हैं। इतनी भीड़ स्वर्ग में कहाँ समाएगी। उन्होंने कहा—तुम्हें विश्वास नहीं है ? कतई नहीं है। उन्होंने तर्क करना शुरू कर दिया। उन्होंने कहा कि मेरी समझ में नहीं आता, जाने आप कौन-सी भाषा में कह रहे हैं कि ये सब स्वर्ग को जाएँगे। उन्होंने कहा कि अच्छा चलो मेरे साथ अभी दिखाता हूँ कि जाते हैं कि नहीं जाते।

तो शंकर जी ने कोढ़ी का रूप बनाया, बूढ़े का रूप बनाया और पार्वती का रूप था नौजवान खूबसूरत लड़की के रूप में। उन्होंने कहा कि पार्वती! तुम मेरे बोझे को सँभाल लोगी। उन्होंने कहा—नाथ! जब आप मुझे शक्ति देंगे तो मैं क्यों नहीं आपका वजन सँभाल लूँगी। आप जो कुछ भी मेरे ऊपर वजन लादेंगे, मैं सब सहन कर लूँगी। उन्होंने कहा—तो बस, बन गया काम। शंकर जी कंधे पर सवार हो गए और पार्वती जी शंकर जी को लेकर गंगास्नान के लिए ले जा रही थीं। तो जो भीड़ जा रही थी, क्या कह रही थी, जरा देखना-सुनना। अपनी जबान से उस माँ के लिए कहते हुए उनकी जबान नहीं कटी। हमारी जो बेटियाँ, हमारी ये बहनें जिनकी ओर कुदृष्टि डालते हैं, उनकी आँखें फूटती नहीं हैं और जबान कटती नहीं है। तब भी ये ऐसे ही थे, अभी भी ऐसे ही हैं।

उन्होंने कहा—अरे! क्या मिलेगा इस कोढ़ी के साथ, तू चल हमारे घर। हमारे यहाँ भैंसें हैं और कोठी है, कार है, खूब खिलाएँगे तो ऐसी मोटी हो जाएगी और कार में घुमाएँगे जेवरों से लाद देंगे। बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनाएँगे। इस कोढ़ी को यहीं डाल, यहीं फेंक और चल हमारे साथ। तो पार्वती जी दु:खी हुईं और उन्होंने कहा—नाथ!

संत से उनके शिष्य ने पूछा—''गुरुदेव! आप इतनी सारी दैनिक व्यस्तताओं के मध्य भी ध्यान-पूजा, भगवद्भजन का समय कैसे निकाल लेते हैं ?'' संत ने उस शिष्य को समीप से गुजरती एक महिला दिखाई, जो सिर पर पानी से भरी गागर व दोनों हाथों में अपने दोनों बच्चों को लिए जा रही थी।

संत बोले—''सिर पर इतना वजन रखने से क्या वह महिला अपने बच्चों को भूल जाती है ?''

शिष्य बोला—''नहीं गुरुदेव! वह तो उनकी माँ है, कैसे भूल सकती है।''

संत बोले—''तो मैं भी तो भगवान का पुत्र हूँ, उन्हें कैसे भूल सकता हूँ ? कितने भी सांसारिक काम हों, मुझे परमपिता परमात्मा सदा याद रहते हैं।''

इसी के लिए, मेरा निरादर कराने के लिए मुझे लाए थे क्या ? क्या यही भक्त स्वर्ग में जाएँगे ? ये तो न अब जाएँ न फिर जाएँ, ये तो कभी नहीं जाएँगे, सौ जन्म में भी नहीं जाएँगे।

उन्होंने कहा—पार्वती! अभी देखती चल आगे-आगे क्या होता है? उन्होंने कहा—भगवान! मैंने देख लिया आपकी माया अब मुझे तो कुछ देखना नहीं है, अब तो मैं थक गई। मेरी आँखें भी फूटी जा रही हैं और मेरे कान भी ऐसा मालूम पड़ रहा है, जैसे कोई गरम तेल डाल रहा हो। मुझे माँ कहते थे और लोग मुझे अर्घ्य चढ़ाते थे, नहलाते थे। बेलपत्र चढ़ाते थे कि ये शंकर जी की पत्नी हमारी माँ हैं, विश्व की माँ हैं और आज ये माँ के लिए ऐसे-ऐसे शब्द कह रहे हैं कि मैं क्या करूँ?

उन्होंने कहा—पार्वती! इस दुनिया में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, देखती जाओ और शाम हो गई, तो उधर से गंगा जी की तरफ एक राहगीर आ रहा था। पार्वती अपने पति को लिए बैठी थीं कि अब तो मैं थक गई। वो पास आया, प्रणाम किया। उसने कहा कि माँ धन्य है आप जैसी पवित्र नारी के लिए। आप साक्षात् माँ हैं, देवी हैं जो आप सेवा कर रही हैं, थोड़ा-सा लाभ हमें भी दीजिए। क्या दूँ बेटे! क्या करेगा? आप क्यों आई हैं? उन्होंने कहा कि बेटे! मैं इसलिए आई हूँ कि मेरे पति का मन था कि मुझे गंगास्नान कराया जाए।

तो मैं गंगास्नान कराने के लिए लाई हूँ, पर बेटे! अब मेरे पैरों में दम नहीं रहा, अब मैं थक गई हूँ, अब मैं कैसे इनको गंगास्नान कराऊँ, इसलिए मैं यहीं बैठी हूँ। उसने कहा कि माँ मैं जो आपका बेटा हूँ, आपने जन्म ही तो नहीं दिया है, लेकिन मेरे लिए तो आप साक्षात् माँ हैं। आप साक्षात् पार्वती हैं, चलिए मैं नहलाता हूँ और बेटे वो गया, गंगाजल लाया, उनको नहलाया। जहाँ पीव-मवाद थी, उसको पोंछा और कहा कि माँ अब मैं चलता हूँ।

तब शंकर जी ने कहा कि पार्वती! ये जाएगा स्वर्ग। अब तक तो ये जितने भी थे, ये भड़ुए थे। गंगास्नान वाला कोई भी नहीं था, यह सब भड़ुए थे और भड़ुए कहाँ जाएँगे, अपना पैसा भी गँवाएँगे और समय भी गँवाएँगे, निरर्थक गँवाएँगे और खाली हाथ चले जाएँगे; क्योंकि ये भड़ुए हैं। जैसी इनकी नीयत है, वैसी ही बरक्कत और स्वर्ग में सिर्फ जाएगा तो यह जाएगा, जिसका मैंने उदाहरण दिया।

ज्ञान की गंगा को लाइए

बेटे अभी मैंने शंकर और पार्वती का उदाहरण दिया है। ये लोक-कल्याण के लिए, ज्ञान की गंगा को लाने के लिए आपके लिए तैयार हैं, आप भी नहाइए और दूसरों को नहलाइए। उसमें आप भी सराबोर हो जाइए और दूसरों को भी सराबोर कीजिए। उनको भी अवसर दीजिए, नहीं खुद ही खाएँगे, खुद ही लेंगे, नहीं बेटे न खुद खाएँगे न खुद लेंगे अन्यथा आप भी खाली-के-खाली रह जाएँगे।

इसी संदर्भ में चलिए आपको मैं एक और कहानी सुनाती हूँ। एक ब्राह्मणी थी, एक ब्राह्मण था और एक था उसका बच्चा, तीनों जन जा रहे थे। फिर वो शंकर-पार्वती आ गए। पार्वती ने कहा कि साहब! तीनों ने आपकी इतनी उपासना की है। तीनों को आप वरदान नहीं देंगे? उन्होंने कहा कि पार्वती! देने को तो मैं लालायित हूँ कोई हो तो सही। जैसे गाय के थनों में दूध भरा रहता है, गाय रम्हाती है कि मेरा बच्चा कहाँ है, जो मेरे थन का यह दूध पी जाए और ये हलके हो जाएँ। दूध देने के लिए गाय रम्हाती है, अरे ले तो सही, कोई हो तो सही, मैं किसको दूँ आखिर?

उन्होंने कहा कि इतने दिनों से जो उपासना कर रहे हैं और माला सटका रहे हैं, सटक-सटक, सीताराम सटक सीताराम का सवा लाख का अनुष्ठान, 24,000 का अनुष्ठान। अच्छा और जीवन में कुछ नहीं धारण किया तो क्या हुआ? खाली हाथ मिलेगा, कुछ नहीं मिलेगा। अरे, माताजी क्या

करें ? हाँ बेटा देख वही कह रही हूँ, सच्ची कह रही हूँ, मैं झूठ नहीं कह रही।

उन्होंने कहा कि तीनों ने इतना तप किया अब तो आप इनको दे दीजिए। आप ऐसे संकुचित क्यों हो रहे हैं ? आप भी मनुष्यों की तरह संकीर्ण रहेंगे क्या ? नहीं, सो तो नहीं हूँ। मनुष्यों की तरह से संकीर्ण रहूँगा तो मुझमें और साधारण मनुष्य में क्या अंतर रह जाएगा। तुम कहती हो तो अभी देता हूँ चलो। उन्होंने कहा—तो सबसे पहले बुढ़िया आगे आ गई।

शंकर जी ने कहा-- भाई ऐसा है तुमने तप किया है, मैं बहुत प्रसन्न हूँ और चलो जो तुमको माँगना है, वरदान माँग लो। तो सबसे आगे बुढ़िया आ गई। बुढ़िया ने कहा—भगवान! यदि आप वरदान दे रहे हैं तो एक वरदान मुझे दे दो। क्या वरदान दें ? बस, मुझे तो खूबसूरत बना दो। बच्चियों को हँसी आ गई देख लो खूबसूरत बना दो। उन्होंने कहा—दे दिया तुम्हें वरदान। बस, अब वो अठारह साल और 16 साल की खूबसूरत जवान बन गई, जो खूब जेवर पहने हुए थी, पाउडर लगाए हुए थी, लिपिस्टिक पोते हुए थी, खूब लाल-लाल गाल और ओंठ भी लाल, सब लाल-ही-लाल दिखे और कपड़े भी उसके चमक-दमक।

सो बुड्ढा यह देखकर जल करके खाक हो गया। उसका तन, बदन जल गया और उसने कहा कि चुड़ैल इसी दिन के लिए तूने उपासना की थी और वो झल्लाया कि आज तो मैं इसे जान से ही मार दूँगा। शंकर जी बोले कि भाई, ऐसे गरम क्यों हो रहा है ? दु:खी क्यों हो रहा है, तू क्यों परेशान हो रहा है ? तू भी माँग ले एक वरदान। उसने कहा कि हाँ तो मेरा काम बन गया। तो माँग, क्या माँगता है।

उसने कहा कि यदि आप वरदान दे रहे हैं तो एक वरदान मुझे ऐसा दे दो कि बस, फिर मुझे कुछ माँगना नहीं पड़े, तू माँग ले। उसने कहा कि यह जो चुड़ैल बुढ़िया है, इसको सुअरिया बना दो। तो उन्होंने कमंडलु से जल लिया और छिड़क दिया और सुअरिया बना दिया।

अब उसका बच्चा रोने लगा, अरे मम्मी को क्या हो गया ? मेरी मम्मी तो सुअरिया हो गई। उसने कहा महाराज जी ! क्या कर रहे हैं ? आप ने इसे सुअरिया बना दिया, ये क्या कर दिया ? उन्होंने कहा कि बेटे तू क्यों रो रहा है ? तू भी एक वरदान माँग ले, हम तो देने के लिए खड़े हैं, लेना है तो ले- ले। उसने कहा कि भगवान मैं तो कुछ नहीं माँगता, जैसी मेरी माँ थी, वैसी ही आप बना दीजिए। फिर वो बुढ़िया हो गई।

संयम और संघर्ष एकदूसरे के पर्यायवाची हैं तथा असंयम की परिणति ही दीन-दरिद्रता, रोग-शोक के रूप में होती है। जीवन देवता की उपासना तब ही भली प्रकार संभव है, जब अपने जीवन रसों को व्यर्थ बहाना छोड़, मनुष्य उन्हें सृजनात्मक चिंतन व कर्त्तव्य में नियोजित करता है।

तब शंकर जी ने कहा कि देख लिया पार्वती जी मैंने तो तीनों को एक-एक वरदान दे दिया। मेरी तो कंजूसी नहीं रही, अब तो वही बात आ गई। देने वाले ने बहुत दिया, लेने वाले के आँचल ही न समाये तो क्या करेंगे। उन्होंने कहा कि इनकी खोपड़ी में ही नहीं आया, इनकी समझ में ही नहीं आया, जो माँगना चाहिए था वो इनकी खोपड़ी में ही नहीं आया, इनकी समझ में ही नहीं आया, जो माँगना चाहिए था वो इन्होंने नहीं माँगा और नहीं

माँगना चाहिए था वो इन्होंने माँग लिया। अब मैं क्या कर सकता हूँ? खाली हाथ के खाली हाथ रहेंगे।

हाँ बेटे, आप भी इसी तरीके से रहेंगे। यदि आप भी उसी में से होंगे ब्राह्मण, ब्राह्मणी में से, बच्चों में से तो फिर आपका भी यही हाल होने वाला है, समझ लेना। फिर गुरुजी को दोष मत देना कि गुरुजी ने नहीं दिया। गुरुजी ने तो बेटे सब कुछ दे दिया। आप नहीं समझे तो वो क्या कर सकते हैं? उनके हाथ की बात नहीं है, आपके हाथ की बात है।

संत की तपस्या

बेटे एक संत थे। संत ने तपस्या की और गणेश जी आए। कहा—भाई! वरदान माँग लो। तुमने इतना तप किया है तो वरदान ले लो। उन्होंने कहा—जाओ अपने घर, हमने इसके लिए तप नहीं किया। हमारी जीवात्मा के ऊपर जो कषाय-कल्मष चढ़ा हुआ है, मल की जो पर्त चढ़ी हुई है, उसके लिए हम तप कर रहे हैं, हम वरदान के लिए नहीं कर रहे हैं। जाइए यहाँ से हम अपने आप ही वरदान पा लेंगे। काहे का वरदान माँगें, पैसे का माँगें तो हमारी भुजाएँ कहाँ चली गईं। अक्ल हमारी कहाँ चली गई है। हम अक्ल से कमा लेंगे, भुजाओं से कमा लेंगे। करोड़ों रुपये की, अरबों रुपये की काया जो संसार की सारी दौलत से ज्यादा है, जो भगवान ने हमें नियामत रूप में दिया है। फिर हमारे पास काहे का घाटा रह गया है। केवल घाटा है तो हमारी अक्ल का घाटा है, अंत:करण का कोई घाटा नहीं। उन्होंने कहा—चला जा।

गणेश जी भगवान शंकर जी के पास पहुँचे। पापा जी! उन्होंने मेरी नहीं मानी, दुत्कार के भगा दिया। उन्होंने कहा कि भाई, ये तो भगवान का भी तिरस्कार हो गया अब तो मुझे ही चलना चाहिए। शंकर जी आए और उससे कहा कि भाई हम तुम्हारे तप से बहुत प्रसन्न हैं, तुम माँग लो। उसने कहा कि हमको नहीं चाहिए। तुम्हें नहीं चाहिए तुम मत लो, लेकिन लोक-कल्याण के लिए, लोकहित के लिए ले लो।

उसने कहा कि तब आपका वरदान सिर माथे पर है। फिर तो मुझे लेना ही चाहिए और लूँगा ही। तो उन्होंने कहा—माँग। उसने कहा कि भगवन्! आपकी छाया चाहिए, जिधर जाऊँ, मेरी छाया जहाँ पड़े, वहीं स्वर्ग, वहीं प्रसन्नता, वहीं प्रफुल्लता, वहीं आनंद और वहीं ज्ञान का सागर लहराता चले। उन्होंने कहा—मैंने बेटे दे दिया।

संत आगे बढ़ता गया और छाया पीछे-पीछे चलती गई और जहाँ-जहाँ छाया पड़ती गई, बेटे वहीं कायापलट होता गया। हरे भरे पेड़ हो गए, जहाँ से निकला वहीं से सुगंध, वहीं से प्रकाश और वहीं से छाया आगे बढ़ती गई। संत ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। बेटे हूबहू आपके साथ भी यही बात है। इस संत ने भी कुछ नहीं माँगा है। बिलकुल खाली हाथ सारे दिन कमाया और शाम को सब पल्ला झाड़ दिया और चैन की नींद सोए। कई बार रात को कोई परिस्थितियाँ आ जाती हैं तो मैं कहने भी लगती हूँ कि साहब! कुछ ऐसा, कुछ वैसा न हो जाए। उन्होंने कहा कि देखो जी! कोई ऐसा-न-वैसा, शाम हो गई है? हाँ साहब! हो गई। छोड़ो, हमें न कोई चिंता है न कोई फिकर है। जिस भगवान ने हमको बनाया है वही हमारा सब कुछ है, हमको कुछ नहीं चाहिए, सो जाओ चुपचाप।

हमने कहा—साहब! बिलकुल ठीक, मेरी अक्ल थोड़ी ऐसी हो रही थी, इसलिए मैं कह रही थी। बेटे चिंता नाम की कोई चीज नहीं है और जिसे लिप्सा कहते हैं, मोहग्रस्तता कहते हैं, जो मोह में डूबे रहते हैं, लोभ में डूबे रहते हैं, बेटे रत्ती

भर लोभ भी नहीं है और रत्तीभर मोह भी नहीं है। फर्ज और कर्त्तव्य जरूर है। फर्ज और कर्त्तव्य के प्रति तो बेटे ऐसे ईमानदार हैं कि मैं समझती हूँ कि सारे संसार में यदि हम दीपक लेकर ढूँढ़ें तो शायद ही कोई ईमानदारी में मुकाबले का निकले। वफादारी और ईमानदारी, फर्ज और कर्त्तव्य में अद्वितीय, बीबी के लिए भी फर्ज और कर्त्तव्य। कोई बीमार पड़ जाए तो बेटे उपचार से लेकर सारी-की-सारी जिम्मेदारी स्वयं अपने कंधे पर ले लेते हैं। सारे में लिप्त हैं ? लिप्त नहीं हैं, बेटे लिप्त होते, तो हम भी कहीं महल बनाकर रहे होते, गाड़ियों में सवार हुए होते और जाने क्या होता। फिर हम तो जानें कौन हो गए होते ? लेकिन फकीर हैं बेटे, बिलकुल फकीर। कोई हम भिखारी नहीं हैं। हम दिलेर हैं, सारा समाज हमारा अपना है, सारा विश्व हमारा अपना है।

स्वामी रामतीर्थ कहते थे कि यह सारा संसार राम बादशाह का है। बेटे हम तो बादशाह हैं। इतने बच्चों की माँ हूँ। इतने बच्चे तो मेरे सामने बैठे हैं और जो लाखों-करोड़ों मेरे बालक हैं सो ? ये मेरी बहन के हैं। इनकी जेब, मेरी जेब है। दौलत की कोई कमी है क्या ? हमारे पास दौलत की कोई कमी नहीं है। बेटे जिंदगी में कमी किस चीज की है ? किसी चीज की कमी नहीं है। जिंदगी भर बेटे उस संत ने प्यार लुटाया और श्रद्धा पाई। बेटे दिया- ही-दिया है और हजारों गुना लिया। ये सिद्धांत सही है देना और लेना। आप लोगों ने लेना सीखा, लेकिन देना नहीं सीखा। जिस दिन देना सीख जाएँगे तो सच मानिए अनुदानों की जो वर्षा ऊपर हुई है, आपके ऊपर भी अनुदानों की वही वर्षा होने वाली है।

भावना दें पैसे नहीं

माताजी ! आपका संकेत क्या पैसे की तरफ है। अरे हट, फिर तू पैसे को लेकर आ गया। अरे पैसे की कौन कहता है ? पैसा नंबर दो पर आता है। ठीक है इमारत पैसे से बनती है, कल-कारखाने पैसे से चलते हैं। हाँ, पैसों की भी जरूरत है, इतनी गाड़ियाँ गई हैं, पैसे से गई हैं, कार्यकर्त्ताओं का निर्माण होता है और वो पैसे से होता है और इतनी टूट-फूट का इतना जो खरचा लेकर बैठे हैं, वो सब पैसे का ही है। हाँ बेटे बिलकुल पैसे का, लेकिन पैसा ही सब कुछ नहीं है, वो भावना है, वो निष्ठा है, वो आस्था है। यदि आपकी भावनाएँ हमें मिल जाएँ, तब तो बेटे हमको सब कुछ मिल गया। आपकी भावना नहीं मिली तो ? अरे तो फेंकते रहो इन ठीकरों को, ठीकरों से क्या होता है ? यही दे गए, फिर इससे सारा काम चलेगा क्या ? इससे कुछ काम चलने वाला नहीं है। आपकी भावनाओं से काम चलने वाला है। आपकी आस्थाओं से काम चलने वाला है और आपकी निष्ठा और श्रद्धा से ही हमारा काम चलने वाला है। मिशन की जो जिम्मेदारी आपके ऊपर डाली है वह और माताजी इस मिशन का काम इन्हीं से चलने वाला है।

बेटे, ये गुरुजी का और माताजी का आज का संदेश है। गुरुजी और माताजी अलग नहीं हैं। कहते हैं—अरे साहब ! हमने सुना था कि माताजी के रूप में गुरुजी विद्यमान होंगे। हाँ तो देख बेटे, हैं। नहीं हैं, बिलकुल नहीं हैं। कहाँ हैं बता मैं बैठी हूँ। मैं नारी हूँ वो नर हैं, पर हमारे विचार और सिद्धांत दूध और पानी के तरीके से, छाया और वृक्ष के तरीके से एकदूसरे के साथ हैं, शरीरों के लिए नहीं, उद्देश्यों के लिए हैं। मैंने पहले भी कहा था अब भी कह रही हूँ, बेटे शरीरों के लिए नहीं, उद्देश्यों के लिए हैं, लक्ष्य के लिए हैं। जो मार्ग हमको दिखाया है, हमने कसम खाई है कि हम इसी मार्ग पर चलेंगे और चलाएँगे। मैं अपने बेटों से कहूँगी बेटे, तुम्हारे सामने मैं जीती-जागती बैठी हूँ, मैं आगे-आगे चल रही हूँ,

साथ रहना, आगे चलना। यह बाप की पुकार है, ये माँ की पुकार है।

बेटे! आज वसंत पंचमी का दिन है। आज गुरुजी का जन्मदिन है। बेटे यह भावभरी श्रद्धांजलि भावनाओं की है, पैसे की नहीं। पैसे होंगे तो पैसा भी देना, नहीं हमें नहीं चाहिए पैसे-वैसे। हमें चाहिए आपकी भावना, हमें चाहिए आपकी आस्था। आज का दिन, आज का ये पर्व हमारे लिए कितना उल्लास का, कितना पवित्र है। उस माँ के लिए क्या कहें, लाख-लाख बार प्रणाम जिसने ऐसे संत को जन्म दिया और उस संत के लिए भी बार-बार प्रणाम, जो हमारे और आपके जीवन में आया।

आज बेटे वही संदेश मैं आपको सुनाने आई थी कि आपके अंतःकरण में यदि ये धारण हो सके तो समझूँगी कि आपका आना सार्थक है। जो अग्नि उनके अंदर जलती रहती है, मेरे बच्चे एक-एक चिनगारी भी लेकर चले जाएँ तो धन्य हो जाएँ। धन्य हो जाए मेरे बालक की वो चिनगारी जो बाप की चिनगारी और बाप का दरद, पिता का दरद, गुरु का दरद ले करके जाए।

जैसे कि आचार्य जी ने, गुरुजी ने अपने गुरु के दरद पर अपना सारा-का-सारा जीवन लगा दिया। गुरु ने आदेश दिया कि बेटे जा घर-घर अलख जगा, ज्ञान के द्वारा अपनी अक्ल को लगा दे, दाँव पर हाथ-पैर लगा दे। बेटे उन्होंने अपने को दाँव पर लगा दिया। बच्चे कहते हैं कि अरे! गुरुजी को क्या हो गया? बीमार हो गए? बीमारी नहीं है। देख ले बीमार कहाँ हैं, देखा नहीं था। वीडियो कैसट में देख ले, बीमार कहाँ हैं? बीमार नहीं हैं। तो डर है? अरे जा रे, डर होगा किसी और को।

हम डरपोक व्यक्ति नहीं हैं। हम तो वो हैं शेर, हाथी अपने रास्ते पर चलता रहता है और पीछे-पीछे कुत्ते भी चलते रहते हैं, भौंकते रहते हैं, भौंकने दो। ये भौंकेगा सो भौंकेगा, लेकिन हम तो शेरों में से हैं और उस हाथी में से हैं। उन दिलेरों में से हैं, जो करके दिखाएँगे। बेटे, कुछ करके दिखाने के लिए आज मैं आपको संबोधित कर रही थी कि जो हमने संकल्प लिया है, वही संकल्प आपको लेना चाहिए। आप लेंगे कि नहीं लेंगे, इसमें तो मुझे शक है, पर मैं विश्वास करती हूँ कि मेरे बच्चे जरूर मेरा अनुकरण करेंगे, आज वसंत पर्व है, बेटे गुरुजी की ओर से और मेरी ओर से आपको शुभकामनाओं समेत बहुत-बहुत प्यार, आशीर्वाद आप सबके लिए।

॥ ॐ शांति ॥

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्।
कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः ॥
आत्मैक्यबोधेन विना विमुक्तिः
न सिद्ध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ॥

—विवेक चूड़ामणि 6

अर्थात चाहे कोई शास्त्रों की व्याख्या करे या देवताओं का यजन करे, नाना शुभ कर्म करे या देवताओं का भजन करे— जब तक ब्रह्म और आत्मा के एकत्व का बोध नहीं हो जाता, तब तक सौ ब्रह्मा का काल (कल्प) के बीत जाने पर भी मुक्ति नहीं होती।

भारत की अखंडता को सुनिश्चित करता विश्वविद्यालय

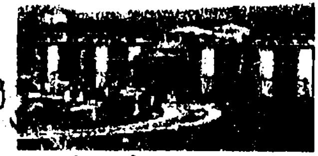

देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार एक बार पुनः अपने बहुआयामी आयोजनों और वैश्विक विचारों के आदान-प्रदान के केंद्र के रूप में चर्चाओं में रहा। विगत दिनों विश्वविद्यालय परिसर में एक दिवसीय संगोष्ठी 'अखंड भारत : समान नागरिक संहिता (UCC) के परिप्रेक्ष्य में नागरिक कर्त्तव्य' विषय पर आयोजित की गई, जो उत्तराखंड राज्य के उच्च शिक्षा विभाग के सहयोग से संपन्न हुई।

इस आयोजन का उद्देश्य नागरिकों में कर्त्तव्य-बोध की भावना को पुनर्जीवित करना और समान नागरिक संहिता जैसे समसामयिक विषयों पर समरसता के साथ विचार करना था। कार्यक्रम में उत्तराखंड के यशस्वी मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी ने बतौर मुख्य अतिथि भागीदारी की और कहा कि भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में समान नागरिक संहिता सामाजिक समरसता और एकात्मकता की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम है। उन्होंने इसे उत्तराखंड की संकल्पशक्ति और जनकल्याण के प्रति प्रतिबद्धता का प्रतीक बताया।

इस अवसर पर माननीय उच्च शिक्षा मंत्री डॉ० धन सिंह रावत भी उपस्थित रहे, जिन्होंने शैक्षिक संस्थानों में नागरिक चेतना और संविधान में उल्लेखित कर्त्तव्यों को केंद्र में लाने की आवश्यकता पर बल दिया। विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने अपने वक्तव्य में भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषताओं की चर्चा करते हुए कहा कि यहाँ अधिकारों से पहले कर्त्तव्यों का बोध कराया जाता है। उन्होंने उपस्थित छात्रों, विद्वानों और अतिथियों को नागरिक धर्म और नैतिक दायित्वों के प्रति जागरूक रहने का संदेश दिया।

संगोष्ठी में अनेक कानूनी विशेषज्ञ, शिक्षाविद्, प्रशासनिक अधिकारी और सामाजिक कार्यकर्त्ता सम्मिलित हुए, जिन्होंने विषय को ऐतिहासिक, सामाजिक और संवैधानिक दृष्टिकोण से विवेचित किया। इसके पश्चात बीते दिनों विश्वविद्यालय परिसर में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन 'सनातन संस्कृति : राष्ट्रीय एकता और सद्भाव के लिए शाश्वत ज्ञान' विषय पर आयोजित हुआ।

यह आयोजन सनातन मूल्यों की सार्वकालिक प्रासंगिकता, राष्ट्रीय चरित्र निर्माण, सामाजिक समरसता और वैश्विक चुनौतियों के समाधान के संदर्भ में भारतीय ज्ञान-परंपरा की भूमिका पर केंद्रित था। सम्मेलन का उद्घाटन भारत सरकार के जलशक्ति मंत्री श्री गजेंद्र सिंह शेखावत जी ने किया, जिन्होंने अपने ओजस्वी वक्तव्य में भारतीय संस्कृति को केवल एक धार्मिक व्यवस्था न मानकर एक समग्र जीवन-दृष्टि बताया।

उन्होंने कहा कि भारतीय परंपरा पर्यावरण संरक्षण, जल संतुलन और सामाजिक उत्तरदायित्व की ऐसी गहराइयों से जुड़ी है, जिसे आधुनिक समाज धीरे-धीरे पुनः खोज रहा है। इस अवसर पर उत्तराखंड के पूर्व मुख्यमंत्री श्री त्रिवेंद्र सिंह रावत, साध्वी मंगला जी, भोले बाबा जी तथा विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी भी उपस्थित रहे।

प्रतिकुलपति जी ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि सनातन संस्कृति केवल अतीत का गौरव नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य की भी दिशा है। उन्होंने इसे भारत की आत्मा घोषित करते हुए विश्वविद्यालय की भूमिका को एक ऐसी प्रयोगशाला

बताया जहाँ सनातन के मूल्यों को आधुनिक जीवन में अनुप्रयोग के लिए तैयार किया जा रहा है। इस सम्मेलन में देश-विदेश से आए 700 से अधिक विद्वानों, शोधकर्त्ताओं और आध्यात्मिक चिंतकों ने भाग लिया, जिनमें से अनेक ने अपने शोधपत्रों के माध्यम से संस्कृति, धर्म, योग, दर्शन, शिक्षा और समाज के विविध पहलुओं पर गहन विमर्श प्रस्तुत किया।

इन बौद्धिक आयोजनों के समानांतर, विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में एक विशेष नि:शुल्क स्वास्थ्य परामर्श शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें मेदांता हॉस्पिटल, गुरुग्राम और पं. श्रीराम शर्मा आचार्य शताब्दी हॉस्पिटल के चिकित्सकों की सहभागिता रही। शिविर में हृदय, कैंसर, किडनी, त्वचा, हड्डी, मस्तिष्क, नेत्र, दंत चिकित्सा, फिजियोथेरेपी जैसे 12 से अधिक विशेषज्ञों ने बड़ी संख्या में मरीजों की जाँच की व परामर्श प्रदान किया।

इस सेवा कार्यक्रम में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों, सेवा योजन इकाइयों के स्वयंसेवकों ने सेवाभाव से योगदान दिया। आयोजन का उद्‍देश्य केवल चिकित्सकीय सेवा नहीं था, बल्कि ग्रामीण और स्थानीय समुदाय में स्वास्थ्य जागरूकता बढ़ाना, समय पर परीक्षण कर गंभीर बीमारियों की पहचान करना और समग्र जीवनशैली की ओर प्रेरित करना भी था।

विश्वविद्यालय में हाल ही में अनेक अंतरराष्ट्रीय व राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अतिथियों का स्वागत हुआ, जिन्होंने संस्थान की शैक्षणिक, सांस्कृतिक और सेवा गतिविधियों का अवलोकन किया। बेलारूस की सामाजिक शोधकर्त्ता अक्साना पाखा बाबा ने विश्वविद्यालय की वैकल्पिक शिक्षा प्रणाली, योग-संस्कृत आधारित पाठ्यक्रमों और जीवन प्रबंधन के दृष्टिकोण की प्रशंसा करते हुए इसे वैश्विक शिक्षा का भविष्य बताया।

ब्राज़ील और अर्जेंटीना से पधारे आध्यात्मिक व्यक्तित्व प्रेम बाबा ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय को पृथ्वी पर स्थित एक दिव्य ऊर्जाकेंद्र बताया और यहाँ चल रहे प्रायोगिक अध्यात्म व युवा नेतृत्व निर्माण की पहल की सराहना की।

अमेरिका की प्रतिष्ठित कंपनी JustAnswer के CEO एंडी कुर्टजिग ने कहा कि—उन्होंने विश्वभर के अनेक विश्वविद्यालय देखे हैं, लेकिन देव संस्कृति विश्वविद्यालय में जीवन, शिक्षा और सेवा का जो समन्वय है, वह अद्वितीय और अनुकरणीय है।

स्वास्थ्य क्षेत्र के जाने-माने व्यवसायी श्री सुरेश वजरानी तथा प्रेरक वक्ता और UPSC मार्गदर्शक श्री अवध ओझा ने भी विश्वविद्यालय में भ्रमण कर यहाँ के नवाचार, शोध और मूल्य शिक्षा मॉडल को आने वाले समय की जरूरत बताया।

इन सभी गतिविधियों के बीच विश्वविद्यालय और रुड़की स्थित क्वांटम विश्वविद्यालय के बीच एक महत्त्वपूर्ण समझौता ज्ञापन भी हस्ताक्षरित हुआ। इसके तहत दोनों संस्थान मानविकी, जनसंचार, स्वास्थ्य, पर्यटन, नवाचार एवं उद्यमिता के क्षेत्रों में संयुक्त शोध, प्रोजेक्ट, फैकल्टी व स्टूडेंट एक्सचेंज कार्यक्रम तथा अन्य शैक्षणिक सहयोग को बढ़ावा देंगे। इस साझेदारी से उत्तराखंड राज्य के उच्च शिक्षा क्षेत्र में अंतर-संस्थागत सहयोग का एक सशक्त मॉडल विकसित होगा।

इसी तरह, उत्तर प्रदेश सरकार के अंतर्गत संचालित नंद बाबा दुग्ध मिशन के प्रतिनिधिमंडल ने भी विश्वविद्यालय का भ्रमण कर यहाँ की गोशाला, पंचगव्य अनुसंधान केंद्र, जैविक खेती परियोजनाओं एवं ग्राम विकास मॉडल का अध्ययन किया। उन्होंने गौ-आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था को उत्तर भारत

में पुनर्स्थापित करने हेतु विश्वविद्यालय से साझेदारी की संभावनाओं पर भी विचार किया।

इन सभी आयोजनों और पहलों से स्पष्ट होता है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय एक शिक्षा केंद्र मात्र नहीं, बल्कि एक वैचारिक आंदोलन, एक सेवा मिशन और एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्राणस्थल है। पूज्य गुरुदेव के विजन एवं मिशन के अनुरूप यह संस्थान उनकी युग निर्माण योजना को यथार्थ रूप में साकार कर रहा है, जिसमें शिक्षा का उद्‌देश्य केवल नौकरी या तकनीकी दक्षता नहीं, बल्कि व्यक्तित्व का निर्माण, समाज की सेवा और राष्ट्र के नवोदय में सक्रिय भागीदारी है। यह अपने उदाहरण से यह सिद्ध कर रहा है कि जब शिक्षा संस्कृति, सेवा और साधना से जुड़ती है, तब वह केवल डिग्री नहीं, दिशा, देती है—एक ऐसी दिशा जो मानवता को उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाती है। ❑

घटना उन दिनों की है, जब शक्तिपीठों की स्थापना का क्रम प्रारंभ हुआ था। गुजरात में जूनागढ़ के एक कर्मठ कार्यकर्त्ता को लगन थी कि अपने में विलक्षण माँ गायत्री की एक पीठ उस गिरनार की पहाड़ी की गोद में बने, जहाँ माँ अंबा का भी मंदिर था। एक दिन उधर से घूमते हुए जा रहे थे कि एक स्थान को देखते ही अनुभूति हुई मानो स्वयं परमपूज्य गुरुदेव कह रहे हैं कि यही स्थान उपयुक्त है, इसे ले लो। पता लगाया वह जमीन जंगलवालों की है व नहीं मिलेगी। वे धुन पर लगे रहे, उसी स्थान पर एक गायत्री महापुरश्चरण आरंभ कर दिया। घनघोर जंगल व हिंसक जंतु किंतु भय तनिक भी नहीं।

अनुष्ठान अवधि में ही ज्ञात हुआ कि एक संशोधन के तहत वह भूमि मिल सकती है। भूमि ले ली जाती, पर पैसे थे नहीं। उसी दिन पुनः ध्यान लगाया तो पूज्यवर ने प्रेरणा दी कि आज ही राशि मिल जाएगी। पूर्वी अफ्रीकावासी एक करोड़पति उनके पास उस दिन मध्याह्न पहुँचा व उन्हें एक कोरा चेक देकर बोला कि जितना पैसा चाहिए ले लो। उन्होंने उतनी ही राशि लिखी, जितने की भूमि थी व आवश्यकता थी। जमीन लेने के बाद भवन बनना आरंभ हुआ। कर्ज लेकर भी निर्माण किया। कामचलाऊ निर्माण होते ही प्राण-प्रतिष्ठा हेतु पूज्यवर के पास दौड़े आ पहुँचे। पूज्यवर ने कहा—''तुम्हारे यहाँ अवश्य आएँगे।''

पूज्य गुरुदेव के प्रवास चक्र में (1981-82) जूनागढ़ भी था। शक्तिपीठ पहुँचते ही उन्होंने प्रतिमा में प्राण संचार कर मौन जप किया व उन परिजन से पूछा कि कितना ऋण तुम पर है। उन परिजन से कुछ कहते न बना। उस प्रवास में पूज्यवर ने कहीं भी सार्वजनिक प्रणाम का क्रम नहीं रखा था, पर वहाँ वे बैठ गए व लगभग पाँच घंटे तक चलने वाले प्रणाम का क्रम चल पड़ा। प्रणाम समापन पर श्रद्धास्वरूप चढ़ाई गई राशि ठीक उतनी थी, जितनी आवश्यकता थी—न एक पैसे कम, न एक ज्यादा। गुरुसत्ता कर्ज उतारने स्वयं भक्त के आग्रह पर जा पहुँची थी। अब वह शक्तिपीठ, भारत के ऐतिहासिक पीठों में से एक है।

व्यवस्था का व्यवस्थित क्रम

व्यवस्था का व्यवस्थित क्रम नवयुग में नया होगा। जो अभी वर्तमान है, वह भविष्य में बदल जाएगा। अभी की व्यवस्था बस, अधिकार एवं आधिपत्य तक सिमट गई है। जिनके हाथों में व्यवस्था के सूत्र हैं; वे अपने अधिकारों एवं आधिपत्य को ही जताने, बताने, दिखाने में लगे रहते हैं। इस फेर में व्यवस्था-अव्यवस्था बनकर रह गई है; जबकि यथार्थ में व्यवस्था के आयाम अनेकों हैं। इसका सबसे पहला आयाम है—संसाधनों का समुचित नियोजन एवं संवर्द्धन। इसका दूसरा आयाम है—प्रतिभाओं का संवर्द्धन एवं नियोजन। इसका तीसरा आयाम—जुटाए गए संसाधनों का खोजी गई प्रतिभाओं के साथ तालमेल करना है। इसका चौथा आयाम—संसाधनों व प्रतिभाओं के समुचित संयोग से, सभी का सब जगह—सर्वत्र सुख-सुविधा के संवर्द्धन एवं दु:ख-दुविधा के उन्मूलन के लिए तत्पर होना है।

यदि ये चारों आयाम सही-सही समझे जाएँ, इनकी सक्रियता भी सही-सही हो, तो फिर व्यवस्था भी व्यवस्थित बनी रहती है। ऐसा न होने पर व्यवस्था में व्यतिक्रम आना सुनिश्चित है। अगर गहराई से जाँचा-परखा जाए; तो व्यवस्था एक संचार प्रणाली की तरह है, जिसको बिना थके-बिना रुके हर समय अपना कार्य करना है। ठीक हमारे शरीर में जिस तरह रक्त-संचार, प्राणसंचार की क्रियाएँ अविराम चलती रहती हैं; उसी तरह से व्यवस्था को भी बिना किसी विश्राम के, बिना किसी भेदभाव के सदा गतिशील रहना पड़ता है। हर स्थिति में इसका उद्‍देश्य व लक्ष्य एक ही है—**'सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:'** सभी सुखी हों, सभी स्वस्थ हों। देश हो या धरती, कहीं भी व्यवस्था का एक अन्य कोई मतलब-मकसद नहीं होता।

वर्तमान में इसकी स्थिति क्या है? इसका अनुभव हम सभी को है। इसे क्या होना चाहिए? इसके बारे में भले ही सबकी सोच अलग-अलग हो, पर जानते सभी हैं। इसे कैसे किया जाए? इस प्रश्न के उत्तर भले ही सबके अलग-अलग हों, पर किया जाना आवश्यक है, इसे सब जानते हैं। अपने मतभेदों के बावजूद इस जरूरत को सब मानते हैं, परंतु सही-सही करने की स्थिति अभी तक नहीं आई है। बात जब कलियुग के कष्ट एवं सतयुग के सुख की कही जाती है, तो आधार यही व्यवस्था ही बनती है। यदि व्यवस्था बदल जाए, तो युग भी अपने आप बदल जाएगा। इसी के लिए प्रयास-प्रयत्न किए गए, प्रणालियाँ बनाई और बदली गईं। हेर-फेर के साथ थोड़े परिणाम भी आए, परंतु सब कुछ सुखद-सुखकारक-सुखदायक हो गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

राजतंत्र-गणतंत्र भारत के लिए, दोनों नए नहीं हैं। पूरी व्यवस्था को, इसके स्वरूप व संरचना को जन व लोक के हाथों में सौंपकर जनतंत्र व लोकतंत्र की बात भी बन गई। विश्व में अनेकों स्थानों पर इसके लिए अनेकों क्रांतियाँ भी हुईं। भारत में लगभग सौ वर्षों तक इसके लिए स्वाधीनता आंदोलन चला। हमें स्वाधीनता मिली भी, परंतु **'सर्वे भवन्तु**

सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' के दर्शन अभी भी नहीं हो पा रहे हैं। देश ने गुलामी और आजादी, दोनों देख लीं। यदि व्यवस्था की पद्धतियाँ व प्रणालियों की चर्चा करें, तो अपने देश भारत ने जितनी अधिक पद्धतियाँ व प्रणालियाँ देखी हैं, अनुभव की हैं; उतनी शायद अब तक अन्य किसी देश ने नहीं की हैं। इस सच को हममें से हर कोई इतिहास के पन्नों को पलटकर पढ़ सकता है। हमारे देश का इतिहास सबसे अधिक प्राचीन और संस्कृति पुरातन रही है। इसलिए सर्वाधिक अनुभव भी हमीं को हुए।

समय के साथ सभी जगह बदलाव आए। स्वाभाविक है कि हमारे देश में भी आए। बदलाव आना भी चाहिए, क्योंकि समय के साथ सामयिक होना हर किसी का अनिवार्य दायित्व है। इसे सभी अपने-अपने ढंग से निभाने का प्रयास भी करते हैं। इसे देश व दुनिया में निभाया भी गया है। जब जो समस्याएँ आईं, तब उनके समाधान के लिए यथासंभव प्रयास-प्रयत्न भी हुए। पर एक बात विचारणीय बनी रही, सभी ने सभी तरह के प्रयास परिस्थितियों में परिवर्तन के लिए किए। मनःस्थिति में परिवर्तन के लिए प्रयास कितने हुए?—यह प्रश्न अभी तक अनुत्तरित है।

जो कुछ सोचा गया, बदला गया, परिवर्तित किया गया—वह सबका सब परिस्थितियों के परिदृश्य के लिए था, व्यवस्था को व्यवस्थित करने के लिए था। दशकों, सदियों, सहस्राब्दियों, युगों-युगों के अनुभव के साथ, सभी प्रयासों के सारे परिणामों को देखकर हम यह कह सकते हैं कि कहीं कुछ अधूरा रह गया, कहीं कोई चूक हो गई।

यह अपूर्णता, यह भूल-चूक इस बात में रही कि हमने समस्याओं को बाहरी तौर पर देखा, उनके आंतरिक कारणों का ब्योरा नहीं जाना। व्यवस्था तो बदली, पर व्यवस्था करने वालों का अंतःकरण नहीं बदला। बाह्यजगत् के बाहरी कारणों से हम सब मिलकर जूझते-उलझते रहे, पर अंतर्जगत् के कारणों में अंतःकरण के परिवर्तन, परिमार्जन, परिष्कार के प्रयास कभी नहीं किए गए। यही वजह है कि प्रत्येक व्यवस्था, प्रत्येक प्रणाली थोड़े ही दिनों में निरर्थक-नकारा होती गई। उसमें फिर से बदलाव की जरूरत अनुभव होने लगी। ऐसा इसलिए हुआ; क्योंकि व्यक्ति बदले थे, व्यक्तित्व नहीं। हमने प्रणालियों में परिवर्तन तो कर दिए, पर आंतरिक परिमार्जन के प्रयास की ओर ध्यान नहीं दिया गया।

बाह्यजगत् के बाहरी कारणों से हम सब मिलकर जूझते-उलझते रहे, पर अंतर्जगत् के कारणों में अंतःकरण के परिवर्तन, परिमार्जन, परिष्कार के प्रयास कभी नहीं किए गए। यही वजह है कि प्रत्येक व्यवस्था, प्रत्येक प्रणाली थोड़े ही दिनों में निरर्थक-नकारा होती गई। उसमें फिर से बदलाव की जरूरत अनुभव होने लगी। ऐसा इसलिए हुआ; क्योंकि व्यक्ति बदले थे, व्यक्तित्व नहीं।

अब जब बात युग-परिवर्तन की कही जा रही है, नवयुग-सतयुग की की जा रही है, तो इसके पीछे का सच कुछ और है। व्यवस्था, प्रणाली, पद्धति तो पहले भी बदले हैं, अभी भी बदल रहे हैं, बाद में भी बदलते रहेंगे; लेकिन युग-परिवर्तन के लिए जो बदलाव किया जाना है, वह कुछ और है। हम सत्ता की नहीं, सत्य की बात कर रहे हैं। बाह्यजगत् के बाहरी करणों व कारणों की बात न कहकर अंतःकरण के आंतरिक करणों व कारणों की बात कह रहे हैं। इन पंक्तियों को लिखते हुए हमें मालूम है कि प्रश्न व्यापक है, लक्ष्य विराट है,

तो स्वाभाविक है कि ढूँढ़े जा रहे उत्तर भी उतने ही व्यापक एवं विराट हों। इन सबके लिए समय लगना स्वाभाविक है। काल व सत्य के गूढ़ ज्ञाता महाकाल से यह सब कुछ छिपा नहीं है। इसीलिए उनकी साधना शतवर्षीय रही।

इसके माध्यम से बाह्यजगत् के बाह्य करणों व कारणों के स्थान पर अंतर्जगत् के आंतरिक करणों व कारणों में फेर-बदल की जा रही है। व्यवस्था का क्रम पहले प्रकृति के अंतराल में व्यवस्थित होगा, फिर उसके परिणाम देश व धरती की बाहरी परिस्थितियों में आएँगे। इसलिए इस बार आने वाला बदलाव, सुदीर्घ अवधि के लिए होगा। यहाँ हम एक सच उजागर कर दें कि हमारे निजी जीवन में जो कुछ होता है, हमारी जो परिस्थितियाँ-परिदृश्य व घटनाक्रम होते हैं; उन्हें हम कितना ही बाहर क्यों न ढूँढ़ते रहें, बाहर कहीं किसी व्यक्ति या परिवेश में इनके कारण तलाशते रहें, पर यथार्थ में इनकी जड़ें हमारे प्रारब्ध में होती हैं; हमारे चित्त में जड़ जमाए बैठे हुए कर्माशय में, संस्कारों की संरचना में होती हैं। ऐसे में अगर परिदृश्य व परिवेश में बदलाव लाना है, तो चित्त की प्रारब्ध संरचना में बदलाव लाना पड़ेगा।

महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में इसे ब्योरेवार बताया है। इसके लिए उन्होंने तप-स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान के रूप में क्रियायोग को उपयोगी कहा। यह बात व्यक्तिगत जीवन की है, व्यक्ति विशेष की है, परंतु यदि बात सामूहिक व समष्टिगत जीवन की हो, तो परिवर्तन सामूहिक चित्त में करने पड़ेंगे। समष्टि के प्रारब्ध को परिमार्जित करना पड़ेगा। व्यवस्था की विसंगतियों को दूर करने के लिए प्रकृति के गहरे अंतराल में प्रवेश करके इन्हें दूर करना पड़ेगा। जो अखण्ड ज्योति पत्रिका के नियमित पाठक हैं और इसे सुदीर्घ अवधि से पढ़ रहे हैं, उनसे हमारा कहना है कि परमपूज्य गुरुदेव ने इसके बारे में सन् 1968 ई0 में लिखा था।

उन्होंने इस वर्ष के एक अंक में लिखा था—इन दिनों प्रकृति के अंतराल में कुछ बीज बोए जा रहे हैं। समय-समय पर इनकी रक्षा के लिए इस क्षेत्र की निराई-गुड़ाई व खाद-पानी की व्यवस्था भी जुटानी पड़ेगी। इस किए गए कार्य के परिणाम निश्चित समय पर अवश्य आएँगे। तब समस्त धरती व मानव जाति अपने सुखद भविष्य की फसल देखेगी। यही उसकी जीवन-व्यवस्था के व्यवस्थित क्रम का आधार बनेगा।

यहाँ पर बाह्यजगत् में किए जाने वाले अच्छे प्रयासों को कमतर नहीं आँका जा रहा है। उन सबका महत्त्व है, जिसे समय के अनुसार अवश्य किया जाना चाहिए, परंतु इसको सार्थकता, संपूर्णता तभी मिलेगी; जब अंतर्जगत् की आंतरिक परिस्थितियाँ इसके लिए अनुकूल हों। इस अनुकूलन से अच्छे और सच्चे व्यक्ति सामने आएँगे, जो अपनी सामर्थ्य से प्रकृति द्वारा उपजाई गई प्रतिभा व संसाधनों का ऐसा सुखद सुनियोजन करेंगे कि 'हम बदलेंगे—युग बदलेगा' का जीवन सत्य सब ओर व्यवस्था का व्यवस्थित क्रम स्थापित करेगा। इसके प्रभाव से राजनीति की नीति में भी बदलाव दिखने लगेगा। ❑

हमें मालूम है कि प्रश्न व्यापक है, लक्ष्य विराट है, तो स्वाभाविक है कि ढूँढ़े जा रहे उत्तर भी उतने ही व्यापक एवं विराट हों। इन सबके लिए समय लगना स्वाभाविक है। काल व सत्य के गूढ़ ज्ञाता महाकाल से यह सब कुछ छिपा नहीं है। इसीलिए उनकी साधना शतवर्षीय रही।

अपनों से अपनी बात

सादा जीवन-उच्च विचार

परमपूज्य गुरुदेव ने अपने महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो उच्चस्तरीय मानदंड व मर्यादाएँ निर्धारित की हैं, वे सभी असाधारण-अचूक हैं। वे हमारे लिए ही नहीं, वरन जो भी विश्वमानवता के कल्याण व वसुधैव कुटुंबकम् की भावना को आदर्श बनाकर लोक कल्याण के मार्ग में प्रवृत्ति की आकांक्षा से भरा है, लोकसेवा से संकल्पित है, उन सभी के लिए पूज्यवर के वे निर्देश राजमार्ग की तरह से हैं।

विगत अंकों में हमने उपासना, साधना व आराधना की त्रिवेणी में स्नात लोकसेवी के अनुबंधों के संबंध में चर्चा की है। उक्त तीनों कसौटियों का पर्याय ही जीवन-साधना है। पूज्य गुरुदेव के इन मानदंडों का पालन करते हुए जीवन-साधना के मार्ग पर जब लोकसेवी अग्रसर होता है तो उसकी गति-स्थिति का मूल्यांकन-चिंतन, चरित्र और व्यवहार की उत्कृष्टता ही है।

ये तीनों मिलकर ही जीवन एवं व्यक्तित्व को समग्रता-पूर्णता प्रदान करते हैं। इसी समग्रता के धरातल पर आत्मकल्याण और लोक-कल्याण की संयुक्त सिद्धि का लक्ष्य प्राप्त होता है। इसी मर्म को गुरुदेव ने '**अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा**' के सूत्र में प्रस्तुत किया है। जन्मशताब्दी की इस वेला में आगामी चौबीस वर्षों के विशिष्ट कालखंड के प्रतिनिधित्व की जिम्मेदारी उन्हीं के कंधों पर आनी है, जिनकी जीवन-साधना में परिपक्वता और व्यक्तित्व की सुपात्रता के मानदंड खरे साबित होंगे।

यह मानदंड है—चिंतन, चरित्र और व्यवहार की उत्कृष्टता। ध्यान रहे कि उपासना की डोर कमजोर पड़ने से चिंतन में विकृति एवं दिशाहीनता की पूर्ण संभावना हो जाती है। चिंतन चेतना सहज ही अपने श्रद्धा-आश्रय को, मूल स्रोत को त्यागकर अन्य आकर्षणों-प्रलोभनों-भ्रांतियों में उलझ जाती है।

चिंतन की विकृति का सीधा एवं प्रत्यक्ष प्रभाव चरित्र की विसंगतियों के रूप में परिलक्षित होने लगता है। चरित्र को सजाने-सँभालने के लिए तप, संयम और साधना की आवश्यकता होती है, परंतु कमजोर चिंतन के धरातल पर साधना-संकल्प कभी पूरे नहीं होते; क्योंकि उपासना से चिंतन की उच्चता-दृढ़ता व साधना से चरित्र की विभूतियाँ प्रकट होती हैं। एक का प्रभाव दूसरे पर सुनिश्चित पड़ता है। चेतना विज्ञान का यही नियम है।

उपासना की न्यूनता में चिंतन की निम्नता और साधना की शिथिलता से चरित्र की निकृष्टता-यही परिणति हो जाती है और फिर चिंतन-चरित्र की कमजोरी से भला जीवन का व्यवहार पक्ष कहाँ अछूता रह पाता है। वह कभी विसंगतियों-समस्याओं से विद्रूप हो ही उठता है। लोकसेवा के क्षेत्र में व्यवहार की कमियाँ अनेकों समस्याएँ उत्पन्न कर आराधना के मार्ग को अवरुद्ध कर देती हैं।

अत: उपासना, साधना, आराधना की अनिवार्य संयुक्ति क्रमशः चिंतन, चरित्र और व्यवहार में समाहित होकर जीवन-साधना के लक्ष्य को पूर्ण बनाती है। हमारे लिए मिशन के महान उद्देश्य की सिद्धि में इस मर्म को आत्मसात् कर इसके मानदंडों पर स्वयं को परखने का अवसर हम सभी के समक्ष प्रस्तुत है।

यहाँ '**अब के चूके तो जन्म-जन्मांतर के लिए चूके और अब के जुटे तो जन्म-जन्मांतर से छूटे**'—यही भाव-संकल्प को साथ ले इष्ट कार्य में सर्वतोरूपेण-सर्वतोभावेन समर्पित हो जाने का समय है। महाकाल की हुंकार, महाशक्ति की चेतना, ऋषिसत्ता का संरक्षण, गुरुसत्ता की पुकार—ये सभी नवनिर्माण के महापरिवर्तन में हम परिजनों की सहभागिता का सौभाग्य लेकर प्रस्तुत हैं।

ऐसे में उनके ही अंश-वंश-जन होने का गौरव प्राप्त करने वाले हम सब भला कैसे पीछे रहें। जो भी, जब-जैसे-जहाँ गुरुदेव से जुड़े हैं, मिशन के अपने हैं, वे सभी इष्ट प्रयोजन में जुटें और परम श्रेय-सौभाग्य के सहभागी बनें, यही अंतर्भावना है। इसी निमित्त जन्मशताब्दी की साधना-संकल्प वेला में जीवन-साधना से जुड़े गुरु-अनुबंधों-मानदंडों की चर्चा की जा रही है।

पिछले अंक में चिंतन के मूलस्रोत और उससे जुड़े महत्त्वपूर्ण दैनिक अभ्यासों की बात की जा चुकी है। उसी क्रम में अब दूसरा आयाम चरित्र का है। चरित्र का मूल आधार साधना है और साधना का तात्पर्य है—तप, संयम, मर्यादा-अनुशासन।

गायत्री महाविज्ञान, क्रांतिधर्मी साहित्य से लेकर वाङ्मय और सैकड़ों छोटी-बड़ी पुस्तकों में गुरुदेव के साधना संबंधित विचार विस्तीर्ण हैं। प्रत्येक के लिए स्वयं के चरित्र को उत्कृष्ट बनाने वाली साधना-प्रक्रिया कैसी हो? क्या हो? इसका उत्तर गुरुदेव के विचारों में अंतर्निहित है।

चरित्र की शुद्धता और प्रामाणिकता लोकसेवा के क्षेत्र में एक अनिवार्य अनुबंध है। साधना-तपश्चर्या के ताप से जब मल-विक्षेप, आवरण हटने लगते हैं, तभी चरित्र में पवित्रता का स्थान बन पाता है। जन्म-जन्मांतर के संस्कार, वृत्तियाँ, प्रकृति, आदतें, गुण-धर्म, स्वभाव—सभी से मिलकर चरित्र बनता है। इसी में हमारा संपूर्ण व्यक्तित्व प्रकट है।

चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए—परिष्कृत बनाने के लिए ही जीवन में कुछ मर्यादाएँ, अनुशासन और संयम की अनिवार्यता कही गई है। पूज्य गुरुदेव ने हमारे लिए चार संयम—इंद्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम, विचार संयम की कसौटी बताई है।

सत्संकल्प के अठारह सूत्रों में हमारे लिए आवश्यक मर्यादाओं-अनुशासनों का विधान बनाया है। इसके साथ समय विशेष पर की जाने वाली साधनाएँ, तप, अनुष्ठान, त्याग, सेवा, संवेदना के कार्य—सभी कुछ इस अभ्यास में सम्मिलित हैं। कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं, बस, बात पूर्ण ईमानदारी से इन गुरु-निर्देशों को पालन करने भर की है। इतना पर्याप्त है, परंतु दुःख एवं क्षोभ तब होता है, जब अपना सोच-विचार भाव में तो बहुत अच्छा, लेकिन जीवन के आचरण में-वास्तविकता में शून्य दिखाई पड़े।

भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहं—सब कुछ को पाले-सँभाले बैठा हो और ऊपर से बातें बड़ी-बड़ी हो रही हों। ऐसी नौटंकी से न तो गुरु कार्य सिद्ध होता है, न लोकसेवा और न आत्मकल्याण सधता है। बात तो गुरु निर्देशित अनुशासनों-अनुबंधों के शत-प्रतिशत पालन करने-आचरण करने से ही बनती है। यही हमारे लिए चारित्रिक पात्रता, प्रामाणिकता का मानदंड है। इसमें कहीं-कोई कमी, विसंगति आ गई हो, तो ठीक होने-सही करने का यही अवसर है।

खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, वाणी-व्यवहार—इन सभी आयामों को गुरु आदर्शों के अनुरूप मर्यादित-अनुशासित बनाए रखना परम आवश्यक है। किसी तरह का समझौता नहीं, ढिलाई नहीं बरतनी है और न अपने किसी को बरतने देनी है। थोड़ा-बहुत तो चलता है—कभी-कभार चल जाता है, ऐसी मूढ़ताओं से बचना है। संचार के इस

युग में समाज की दृष्टि भी चारों ओर से घेरे रहती है। अत: यहाँ भी लोक मर्यादाओं का ध्यान रखना है।

ऐसा न हो कि ऊपर पीला कुरता-दुपट्टा और नीचे जींस-पेंट पहने लोकसेवा हो रही हो या पीले के नाम पर भाँति-भाँति के चमकीले, महँगे, फैशनयुक्त वेशभूषा, सदरी पहन रखी हो।

खान-पान में भी ऐसी ही लापरवाही की जा रही हो। ऐसा बिलकुल नहीं होना चाहिए, न ऐसी आदतों-अभ्यासों को प्रश्रय दिया जाना चाहिए। 'सादा जीवन-उच्च विचार' हम सभी के लिए, प्रत्येक गायत्री परिजन के लिए लोक मर्यादा का परम मूल्य है। ❑

सन् 1964 में गायत्री परिवार दक्षिण में इतना व्यापक नहीं हुआ था। मुंबई (बंबई) में कुछ ही व्यक्ति पूज्यवर को व गायत्री परिवार को जानते थे। बोरिवली के एक परिजन के यहाँ परमपूज्य गुरुदेव यज्ञ हेतु पहुँचे। यज्ञ के लिए धन-संग्रह मात्र एक हजार रुपये ही हुआ था, जो बजट का दशांश मात्र था।

जिस दिन पत्र पूज्य गुरुदेव के मथुरा से रवाना होने का आया, उसी दिन प्रेरणा ने उन्हें एक नामी मिल के मालिक के पास पहुँचा दिया व शेष राशि उसने उसी समय नगद, हाथों में दे दी। वह स्वयं यज्ञ में सम्मिलित होकर धन्य हुआ।

गुरुदेव के भोजन की व्यवस्था उनके ही घर में थी। कुल 6 व्यक्तियों का भोजन बना था, घर भी छोटा था। करीब पचास से ज्यादा व्यक्ति वहाँ उनके साथ पहुँच गए थे। उन्होंने सबको भोजन के लिए बिठा दिया व परिजन की पत्नी से कहा—''जहाँ पानी का मटका रखा है, वहाँ माँ गायत्री का फोटो रखकर एक दीपक जला दो। देखते-ही-देखते सीमित भोजन असीम हो गया। सभी ने भोजन पेट भर किया। बाद में उतना ही बचा, जितने का भोजन बनाया गया था। मानो पूज्यवर के साथ बापा जलाराम की झोली भी वहाँ पहुँच गई थी।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

जीत का विश्वास भर

है सबक यह जिंदगी का, इसलिए विश्वास कर।
हार से मत हार खुद में, जीत का विश्वास भर॥

ये गिरे हैं और गिरे हैं, जाने कितने और भी।
फिर भी देखो धुन के पक्के, हैं यहाँ इन्सान भी॥

समय की आवाज पर, करनी हिम्मत इसलिए।
राह आती मुश्किलों से, फिर तू दो-दो हाथ कर॥
हार से मत हार खुद में, जीत का उत्साह भर॥

टूट जाना हार जाना, गिड़गिड़ाना छोड़ दे।
सिंधु की छाती पे चढ़कर, उद्दाम लहरें मोड़ दे॥
देखती रह जाएगी दुनिया, न अब तू आह भर।
हार से मत हार खुद में, जीत का उत्साह भर॥

संघर्ष ही पुरुषार्थ का, शृंगार है यह जान लो।
रूठती कुदरत न किस्मत, बंदे तुम भी मान लो॥
तू गढ़ा अनमोल साँचे में, गया एहसास कर।
हार से मत हार खुद में, जीत का उत्साह भर॥

हर्ष से उत्कर्ष तक पहुँचो, है यही सद्भावना।
हर हाल में जिंदा रहेगी, जय-विजय संभावना॥
फिर भी आए ना समझ, तो कहना-सुनना माफ कर।
हार से मत हार खुद में, जीत का उत्साह भर॥

है सबक यह जिंदगी का, इसलिए विश्वास कर।

—*राजेश कौशल*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

के

समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

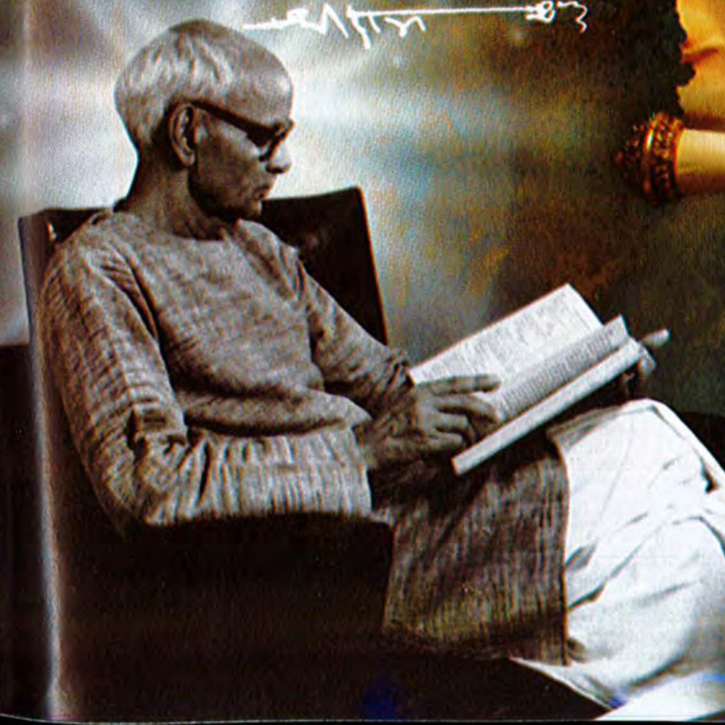

खंड - 8

ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ?

कोन है, कहाँ है, कैसा है ? जिस चेतनाशक्ति से यह संपूर्ण ब्रह्मांड संव्याप्त है—उस परमशक्ति को हम ईश्वर कहते हैं। वह शक्ति स्वयं सर्वसमर्थ है तथा अजर और अमर है। इस ईश्वर का क्या साक्षात्कार संभव है । इस गूढ़ रहस्य को समझने के लिए आप पढ़ना चाहेंगे–

- आस्तिकता की आवश्यकता क्यों है ?
- ईश्वर की अनुभूति ।
- ईश्वर पर विश्वास किसलिए ?
- ईश्वर–प्राप्ति का सच्चामार्ग।
- ईश्वर नियामक सत्ता कैसे ?
- ईश्वर बोध के सरल साधन ।

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01/ 07/ 2025
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

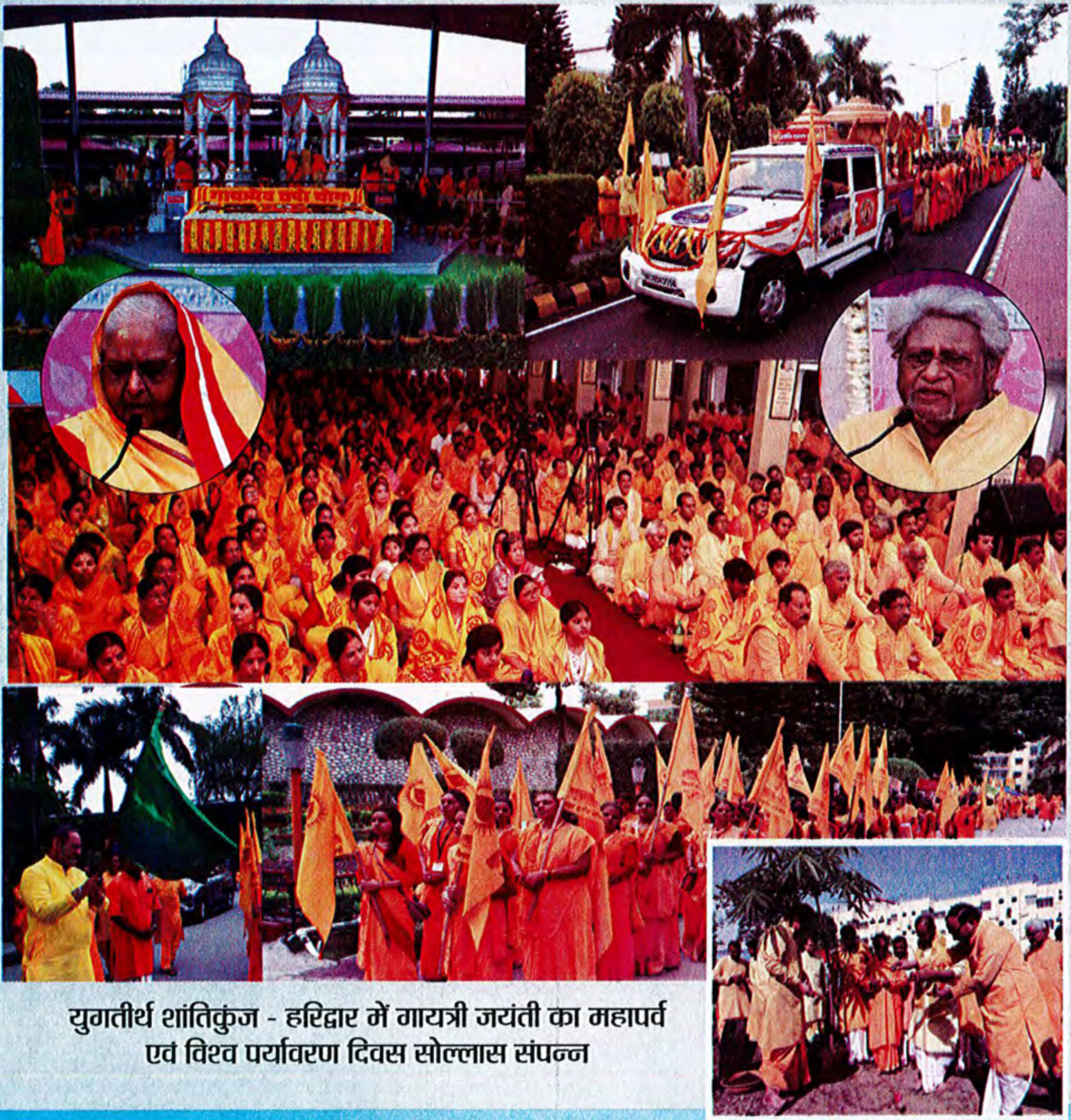

युगतीर्थ शांतिकुंज - हरिद्वार में गायत्री जयंती का महापर्व एवं विश्व पर्यावरण दिवस सोल्लास संपन्न

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ई-मेल – akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org